विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक १२ दिसम्बर २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥
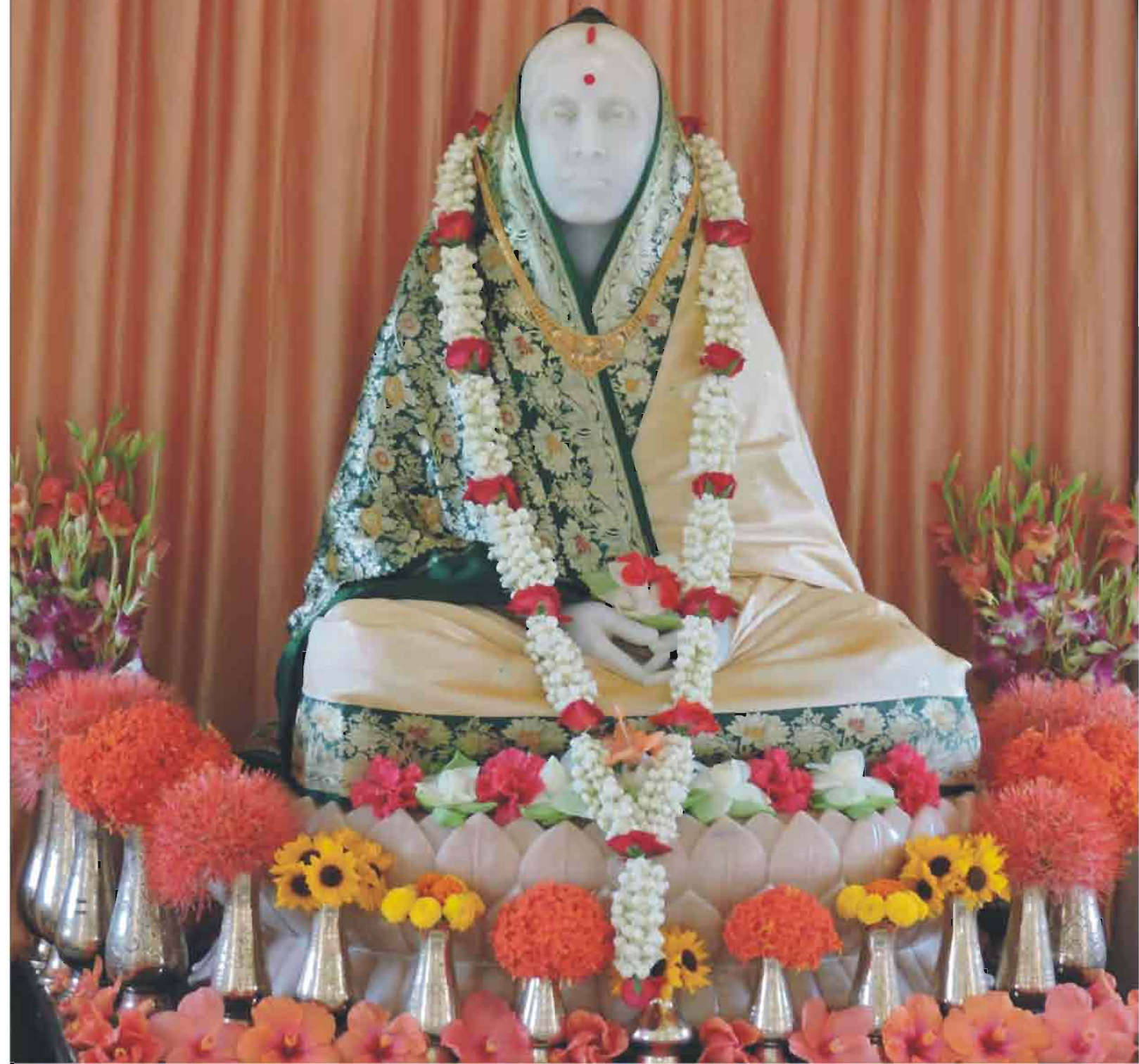
विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक १२

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीमाँ सारदा देवी की यह सुन्दर मूर्ति उनके जन्म-स्थान ग्राम जयरामवाटी (पं. बंगाल) स्थित मातृ-मन्दिर और रामकृष्ण मिशन सारदा सेवाश्रम की है।

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

१६	**स्वामी प्रेमानन्द**
२५	**क्रिसमस डे**
२८	**श्रीमाँ सारदा देवी**

आवश्यक सूचना

२८ दिसम्बर, २०१८ को आश्रम में श्रीमाँ सारदा देवी की तिथिपूजा के उपलक्ष्य में विशेष-पूजा, होम, आरती का आयोजन होगा और तदनन्तर उपस्थित भक्तों को प्रसाद वितरित किया जाएगा । रामकृष्ण मिशन विवेकान्द आश्रम, रायपुर में २ जनवरी, २०१९ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। ३ जनवरी, २०१९ से ११ जनवरी, २०१९ तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणी' के रामचरितमानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है । इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं । श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है ।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५६ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है । आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें । **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	**दान-राशि**
श्री नुनिया राम मास्टर, सेक्टर ४९/बी, चंडीगढ़	५,१००/-
श्री अशोक कुमार तिवारी, रायपुर (छ.ग.)	१०००/-
डॉ. ज्योत्स्ना ओझा, शास्त्री नगर, बीकानेर (राज.)	१०००/-
श्री बिकेश कुमार सिंह, धनबाद (झारखंड)	११००/-

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	**प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)**
५३२. श्रीमती कृष्णा बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)	गवर्नमेंट कॉलेज, पो.-केल्वाड़ा, किशनगंज, जि.-बारां (राज.)

वर्ष ५६ दिसम्बर २०१८ अंक १२

श्रीसारदामातृ-स्तुतिः

ध्यायेत्सदाहृदय-पद्मसुखासनस्थां
सच्चिन्मयीं सकलधर्मसमन्वयां ताम् ।
श्रीरामकृष्णचरितामृतपुण्यपूर्णां
श्रीसारदां त्रिजगतां जननीं शरण्याम् ।।

– अपने हृदय-कमल में सुखासन में विराजमान, सच्चिदानन्दमयी, सर्वधर्मसमन्वयरूपिणी, श्रीरामकृष्ण के चरितामृत रूपी पुण्य से परिपूर्णा, त्रिलोकमाता, शरणागतवत्सला श्रीसारदा देवी का सदा ध्यान करें ।

शुभ्रज्योतिर्मयीं देवीं आत्मबुद्धि-प्रकाशिनीम् ।
शिवां शिवकरीं सत्यज्ञानानन्दातिलक्षणाम् ।।

– शुभ्र ज्योतिर्मयी, दिव्या, आत्मबोध प्रकाशिनी, मंगलस्वरूपिणी, मंगलकारिणी, सत्य-ज्ञान-आनन्द, जिनका स्वरूप है, ऐसी सारदा देवी का हृदय में सदा ध्यान करें ।

रामकृष्णमहाभावां विवेकानन्ददायिनीम् ।
प्रसन्नवदनां देवीं सारदां प्रणतोऽस्म्यहम् ।।

– श्रीरामकृष्ण के महाभाव से सम्पन्न, विवेक और आनन्दप्रदायिनी एवं प्रसन्नवदना श्रीसारदा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

नित्यशुद्धा च या देवी पराभक्तिस्वरूपिणी ।
अप्रमेयप्रभावात् या संसारार्णवतारिणी ।।

– जो देवी नित्यशुद्ध पराभक्तिस्वरूपिणी हैं, असीम शक्ति से जो संसार-समुद्र के जीवों का उद्धार करनेवाली हैं, उन श्रीसारदा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

पुरखों की थाती

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ।।६१९।।

– शरीर के वृद्ध तथा जर्जर हो जाने पर, देह के रोगों से ग्रस्त हो जाने पर, मेरे लिये वैद्य एकमात्र भगवान नारायण हरि हैं और एकमात्र औषधि गंगाजी का जल है।

अकाल-मृत्युहरणं सर्व-व्याधि-विनाशनम्।
विष्णोः पादोदकम् तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ।।६२०।।

– भगवान विष्णु का चरणामृत अकाल-मृत्यु को हरनेवाला है, समस्त रोगों को दूर करनेवाला है, अत: मैं इसे अपने पेट में धारण करता हूँ।

उपकार-गृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्।
पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम् ।।६२१।।

– जैसे पाँव में गड़े हुए काँटे को हाथ में लिये हुए काँटे से निकालते हैं, वैसे ही अपने उपकार से वश में आये हुए शत्रुओं के द्वारा अन्य शत्रुओं का नाश करना चाहिये।

क्वचित् सर्पोऽपि मित्रत्वमियात् नैव खलः क्वचित्।
न शेष-शायिनोऽप्यस्य वशे दुर्योधनः हरेः ।।६२२।।

– सर्प भी कभी-कभी मित्र बन जाता है, परन्तु दुष्ट व्यक्ति कभी मित्र नहीं बन सकता। शेषनाग पर लेटनेवाले भगवान भी दुर्योधन को अपना मित्र नहीं बना सके।

विविध भजन

आरती माँ सारदा तुम्हारी

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

आरती माँ सारदा तुम्हारी ।
श्यामासुन्दरी भव-दुखहारी ।।

रामकृष्ण अवतार संगिनी,
साधक - भक्तचित्तरंजिनी ।
महिमा अमित है मात तुम्हारी ।।
आरती माँ सारदा ...

सज्जन-दुर्जन की तुम माता,
करती कृपा शरण जो आता ।
शरणागत भक्तन भयहारी ।।
आरती माँ सारदा ...

नर-नारी मूरख, विज्ञानी ।
ध्यावत तुम्हें भक्त अरु ज्ञानी,
सब सन्तानों की तुम मैया ।
तन-मन-धन से पालनहारी ।।
आरती माँ सारदा ...

जय सारदे ! माँ सारदे

धनराज मेवाड़, राजस्थान

जय सारदे ! जय सारदे !
जय सारदे ! माँ सारदे !
जीवन-सार दे ! माँ सारदे !
जय सारदे ! माँ सारदे !!
जननी तुम्हारा प्रेम पा हम सब हुये निहाल ।
सबको बनायी अपना, तेरा यह कमाल ।।
दे प्यार दे ! निज दुलार दे !
भक्तिवार दे ! माँ सारदे !!
दौड़े आती माँ तुम सुनकर आर्त पुकार ।
जगदम्बा अवतार तुम सबकी पालनहार ।।
दुख-संकटों से हमें उबार दे !
जय सारदे ! माँ सारदे !!

धन्य जयरामवाटी है !

स्वामी रामतत्त्वानन्द

धन्य धन्य वह देश है, धन्य धन्य वह गाँव ।
धन्य धन्य पुरजन सकल जहँ जननी की छाँव ।।
माँ के पावन चरित का, आओ करें हम गान ।
ममतामयी माँ सारदा, हम उनकी संतान ।।
धन्य जयरामवाटी है, धन्य वहाँ के लोग ।
नित पल काटे सारदा, जनम जनम के भोग ।।
रामचन्द्र की लाड़ली श्यामा की दुलारि ।
प्रगट भयी माँ सारदा, सींचन ममता वारि ।।
सारदा जगजननी गाथा ।
आओ गायें मिल जुल साथा ।।
सारु प्रात नित करहिं प्रणामा ।
रघुवीर खुदिवर पूरण कामा ।।
तन से गृह कारज सब करहीं ।
मन पति पद पल पल अनुसरहीं ।।
खान पान अंग पहिरावा ।
जतन करहिं सब भाँति सुहावा ।।
पति कारज अरु पति पद सेवा ।
करहि समझ हिय निज प्रिय देवा ।।
करहि सकल जस पाहिं आदेशा ।
नहि द्विधा नहिं संसय क्लेशा ।।
पद चापहिं नित सयन कराहीं ।
पति पहँ पतिव्रत आशिष पाहीं ।।
सेवहिं परिजन बाल सयाना ।
जान सकल निज नहि कोउ आना ।।
सेवहि भैरवी सासु समाना ।
कर न्योछावर तन मन प्राणा ।।
रामकृष्ण करहीं शयन, पद चापहिं माँ सारु ।
मन निरखत छवि मधुर अति धन धन भाग हमारु ।।

सम्पादकीय

क्या तुम सबकी माँ हो?

'माँ' शब्द के उच्चारण से ही मन में आशा, सान्त्वना, सुरक्षा की भाव-तरंगें हिलोरें लेने लगती हैं। 'माँ' के सम्बोधन मात्र से मन में यह दृढ़ विश्वास जाग्रत होता है कि माँ हमारी आवाज सुनकर अवश्य आयेगी। माँ के आने की पग-ध्वनि सुनकर समस्त क्लान्ति का प्राय: अवसान प्रतीत होता है। माँ की वाणी, 'बेटा आई' सुनकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। माँ के स्नेहिल स्पर्श से सम्पूर्णत: मानसिक शान्ति और प्रसन्नता की अनुभूति होती है। इसीलिए छोटे-बड़े सभी घर में रहने पर और बाहर से घर आने पर सबसे पहले 'माँ' को ही बुलाते हैं। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ, जो माँ के ऋणों का अल्पांश भाग भी सच्चाई से चुकाने में सक्षम हुआ हो। क्योंकि माँ का अपनी सन्तान हेतु स्नेह, त्याग, समर्पण अनुपम, अतुल्य है, उसे चुकाया नहीं जा सकता है।

माँ से सम्बन्धित उपरोक्त सभी गुण अपवाद को छोड़कर सभी जन्मदात्री माताओं में पाया जाता है। माँ के ऐसे स्नेह, वात्सल्य का अनुभव संसार के प्राय: सभी पुत्र-पुत्रियों को होता है। यह लोक प्रसिद्ध है। लेकिन सामान्यत: लौकिक माताओं का यह प्रेम केवल अपनी सन्तानों के प्रति होता है या कुछ उदारचेता माताओं का कुछ विस्तृत सीमा में होता है। माता के अर्थ की परिपूर्ति लौकिक मातायें सीमित सीमा में ही कर पाती हैं, व्यापक रूप से नहीं, इसलिये इस स्नेह से वंचित प्राणियों का मन सर्वव्यापी जगज्जननी के लिये व्याकुल होता है। जिन सन्तानों की मातायें काल-कवलित हो गईं, जो अनाथ हो गये, जो लौकिक सभी सम्बन्धों के बाद भी यमराज और प्रकृति-प्रकोप की विवशता से अनाश्रित हो गये, वैसी सन्तानों को मातृस्नेह देने हेतु जगज्जननी विश्वव्यापी मातृशक्ति के साथ प्रकट होकर जीवों को अपने अलौकिक प्रेम से आकर्षित कर दिव्यत्व की ओर अग्रसर करती हैं।

माता शब्द का अर्थ है – माँ, जननी, आदरणीया, वयोवृद्ध स्त्री का सम्बोधन, गाय, धरती, लक्ष्मी, दुर्गा, मातृका, जीव, विभूति। लौकिक मातायें गाय जैसी सर्वगुणकारी और हितकारी होती हैं, धरती जैसी सर्वसहिष्णु होती हैं। लक्ष्मी जैसी सर्वसमृद्धिमयी, प्रेममयी होती हैं, किन्तु वे दुर्गा, चण्डी, सर्वविभूतियुक्त अलौकिक देवि नहीं होतीं। क्योंकि ये गुण-स्वभाव तो अलौकिक महादेवियों में विद्यमान होते हैं।

वह माँ जिसका प्रेम सबके प्रति हो, जिसके हृदय में संसार के सभी प्राणियों के लिये वात्सल्य उमड़ता हो, जो संसार की अपनी सभी संतानों का सब प्रकार से मंगल विधान करती हो, जो सबके सुख-दुख की अनुभूति करती हो, जो सर्वत्र सब परिस्थितियों में अपनी सन्तानों के साथ हो, उनका पालन-पोषण-रक्षण करती हो, वह जगन्माता कहलाती है, जगत-जननी कहलाती है, उसका जगदम्बा अभिधान होता है। वही सबकी माँ होती है।

जगत-व्याप्त श्रीदुर्गा, माँ काली, श्रीसीता, श्रीराधा, माता शची आदि अवतार-संगिनी देवियाँ जगदम्बा, जग-जननी पराम्बा हैं। इसी अवतार-लीलासंगिनी शृंखला में युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव के साथ श्रीमाँ सारदा देवी अवतरित होती हैं, जिन्होंने अपने वात्सल्य प्रेम से विश्व-मातृत्व शक्ति को एक दिशा दी और ईश्वर के मातृ-अवतार की अनुभूति कराई। माँ सारदा ने ईश्वर की निष्कारण विशुद्ध कृपा का अनुभव अपने अहैतुक स्नेह द्वारा कराया।

बहुत साधना और तप से जब चित्त शुद्ध होता है, तब ईश्वर के दिव्य प्रकाश से प्रकाशित विमल बुद्धि में प्रभु-अप्राप्ति का विरह उत्पन्न होता है, व्याकुलता उत्पन्न होती है। जब हार्दिक व्याकुलता के साथ-साथ साधक संयमपूर्वक साधना के सोपानों पर अग्रसर होता है, तब उस पर ईश्वर की कृपा वर्षित होती है और वह उस अन्तश्चेतना से कृपा का बोध करने में समर्थ होता है। यह कृपा साधनसाध्य है। ऐसी कृपानुभूति उन साधनारत साधकों को होती है। यह साधारण व्यक्ति को नहीं होती। क्योंकि उसमें विषयविवशतावश इतनी चित्तशुद्धि और व्याकुलता की सामर्थ्य नहीं होती। तब सामान्य लोगों का क्या होगा?

इन्हीं साधारण लोगों को ही धर्म-वर्ण-विधि-निरपेक्ष होकर सबको साक्षात् अपना ईश्वरीय प्रेम-वात्सल्यामृत पान कराने के लिये ही इस बार जगदम्बा किसी शैल-शिखर पर प्रकट न होकर पश्चिम बंगाल के साधारण जयरामबाटी गाँव में नर-शरीर में आविर्भूत हुईं, तब उनके स्नेह, वात्सल्य और सेवा का अनुभव उनके सान्निध्य में आनेवाले स्वदेशवासियों ने तो किया ही, विश्व के अन्य देशवासियों ने भी किया, नर-नारी, पशु-पक्षी, सभी धर्मों, सभी वर्णों ने किया। क्योंकि उनका मातृत्व विश्वव्यापी था। हो भी क्यों न, वे ब्रह्माण्डनायिका, ब्रह्माण्ड-अधीश्वरी, जगदीश्वरी जो हैं।

इस जगत्-व्यापी मातृत्व अभिव्यंजक शब्द की अभिव्यक्ति स्वयं श्रीमाँ सारदा के मुखारविन्द से ही हुई थी। माँ के एक शिष्य रासबिहारी महाराज ने एक दिन श्रीमाँ से पूछा, ''माँ! तुम क्या सबकी माँ हो?'' माँ ने उत्तर दिया, 'हाँ'। इसके और अधिक स्पष्टीकरण में उन्होंने पुन: पूछा, ''क्या इन जीव-जन्तुओं की भी?'' माँ ने कहाँ, ''उन सबकी भी।'' उपरोक्त संवाद में माँ की स्वयं स्वीकृति से उनके सर्वव्यापी जगदम्बा स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है।

सन्तान कैसी भी हो, लेकिन उसके द्वारा करुण भाव से माँ कहकर पुकारने पर माँ कभी रुक नहीं सकती है, वह दौड़े हुए आती है। श्रीमाँ ने स्वयं अपने मुख से कहा था। दिनभर कार्य करते, लोगों से मिलते-जुलते माँ बिलकुल थक जाती थीं, तो कभी किसी भक्त-महिला को अपने पैर दबाने के लिये कहकर उसे सेवा का सुयोग देती थीं। यह देखकर गोलाप-माँ ने शिकायत के स्वर में कहा, ''यह तुम्हारा कैसा स्वभाव है, कोई भी 'माँ' कहता आयेगा कि तुम तुरन्त पैर बढ़ा दोगी !'' इसके उत्तर में श्रीमाँ ने कहा, ''क्या करूँ गोलाप, 'माँ' कहकर आने से मैं रुक जो नहीं सकती हूँ।'' यहाँ श्रीमाँ के जीवन में विश्वव्यापी मातृत्व की संवेदना की झलक मिलती है।

एक दूसरी घटना है। श्रीमाँ दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के कक्ष में प्राय: स्वयं भोजन लेकर जाती थीं। एक दिन उन्होंने किसी महिला के हाथ से भेज दिया। श्रीरामकृष्ण नाराज हो गये। उन्होंने कहा, क्या तुम जानती नहीं हो कि उसका चरित्र ठीक नहीं है? श्रीमाँ ने कहा, ''ठीक है, आज भोजन कर लीजिये। आगे से ध्यान रखूँगी।'' ठाकुर ने कहा कि तुम वचन दो कि इसके बाद ऐसा नहीं करोगी। तभी श्रीमाँ का विराट मातृत्व जाग्रत हो गया। श्रीमाँ ने तत्क्षण उत्तर दिया, ''नहीं ठाकुर, यदि कोई 'माँ' कहकर मुझसे कुछ माँगेगा, तो उसे मैं 'ना' नहीं कह सकूँगी।''

अधमोत्कर्षिणी जगजननी माँ सारदा

साधनचतुष्टयसम्पन्न योग्य साधक-सन्तानों का साधनोत्कर्ष तो सभी कर लेते हैं, किन्तु अन्तर्बाह्यत: अपवित्र अनधिकारियों को भी श्रीमाँ सारदा ने अपने मातृ-स्नेह से उनके बहिरंग और अन्तरंग जीवन को शुद्ध कर उन्हें सज्जीवन की ओर प्रेरित किया था। श्रीमाँ कहती थीं कि कोई भी व्यक्ति पूर्णत: निर्दोष नहीं है। सबमें अल्पाधिक दोष होते हैं। इसीलिये माँ सभी सन्ततियों को समान रूप से ग्रहण करती थीं। एक बार श्रीरामकृष्ण देव के किसी अन्तरंग भक्त ने किसी भक्त के व्यावहारिक दोषों के कारण श्रीमाँ से आकर कहा कि वे उसे अपने पास न आने दें। तब श्रीमाँ ने कहा, ''मेरा बच्चा यदि शरीर पर धूल-कीचड़ लगा ले, तो मुझे ही तो उसे झाड़-पोंछकर गोद में उठाना पड़ेगा न।'' इसीलिये शंकराचार्यजी अपने देव्यापराध-क्षमापनस्तोत्र में कहते हैं – **कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति** – 'हे माँ ! पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती।' श्रीमाँ की इस दैवी मातृत्व की अभिव्यक्ति का बोध कर ही तो देवेन्द्रनाथ मजुमदार ने लिखा था– **आये तोर दुष्ट बेटे गोद ले दुलार कर ले।**

कौआ उन्हें पुकारता है, तो 'आई बेटा' कहकर उसे खाना देने दौड़ती हैं। उन्हें पक्षी की पुकार में भी मातृध्वनि सुनाई पड़ती है। ज्ञान महाराज के द्वारा बिल्ली से दुर्व्यवहार देखकर उन्होंने कहा, ''ज्ञान ! बिल्ली में भी मैं हूँ।'' ऐसा था माँ सारदा का सभी जीवों के प्रति प्रेम।

जीवों के दुख से दुखित होकर सैकड़ों आँखों से अश्रु-प्रवाहित होने के कारण ही एक देवी का नाम शताक्षी देवी पड़ा। श्रीमाँ के जीवन में हम देखते हैं कि वे सदा दूसरों के दुख से दुखित होकर उनके कष्ट-निवारण हेतु तत्पर रहती हैं।

स्वरूप घोषणा : वैकुण्ठवासिनी श्रीमाँ सारदा

एक भक्त ने श्रीमाँ से पूछा – श्रीरामकृष्ण पूर्णब्रह्म हैं या नहीं? श्रीमाँ ने उत्तर दिया, ''हाँ, वे सनातन ब्रह्म हैं – पति के नाते भी और ऐसे भी।'' तब भक्त ने सोचा कि जैसे सीता-राम, राधा-कृष्ण अभिन्न हैं, वैसे ही श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ भी हैं, पर प्रत्यक्ष मानवोचित व्यवहार देखकर पूछा, ''किन्तु तुम्हारा साधारण नारियों के समान रोटी बेलना, क्या यह माया है?'' श्रीमाँ ने कहा, ''माया ही तो है, नहीं तो मैं वैकुण्ठ में नारायण के बगल में लक्ष्मी होकर रहती। बात यह है कि भगवान नर-लीला पसन्द करते हैं।'' श्रीमाँ ने भक्तों को काली, दुर्गा रूप में दर्शन दिया। माँ के शिष्य स्वामी चंडिकानन्द जी लिखते हैं –

जय सारदेश्वरी सीता राधा माता मेरी,
यशोधरा विष्णुप्रिया माँ।
युगदेव वन्दिता सुर-नर सेविता
नमो नारायणी माँ।।

OOO

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२४)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

१५ जुलाई, मिस मैक्लाउड को

जब मैं भारत में आयी थी, उस समय व्यक्तिगत रूप से स्वामीजी के ऊपर मेरी जरा भी निर्भरता न थी। अल्मोड़ा के उस भयंकर समय में जब मुझे लगा था कि उन्होंने घृणापूर्वक मुझे अपने जीवन से पूरी तौर से बाहर निकाल दिया है – तब भी मूलत: कोई फर्क नहीं पड़ा था। परन्तु अब चाहे अच्छा हो या बुरा, वे ही सब कुछ हैं – वे और भी बड़े हो उठे हैं। उनके प्रति मेरा अनुराग अनन्त गुना व्यक्त हो उठा है। उनका छोटा-सा विचार भी मेरा सर्वस्व हो उठा है। यदि कोई उनकी ओर आकृष्ट होता है, तो लगता है कि उसकी सत्ता मुक्त हो गयी। धन्य है वह ईश्वर, जिसने मेरे लिये ऐसा अनुराग सम्भव किया है।

१९ जुलाई, मिस मैक्लाउड को

स्वामीजी बँगला पत्रिका के लिये अपने केबिन में बैठकर सिर झुकाये दास के समान परिश्रम कर रहे हैं। ... तुम्हें बताना आवश्यक है कि यह बँगला पत्रिका उनके लिये आशीर्वाद स्वरूप हो गयी है। वे घण्टे-पर-घण्टे इसके लिये एक सुदीर्घ पत्र की रचना कर रहे हैं – वह मजेदार रसिकता से परिपूर्ण है, साथ ही उसमें टीका-टिप्पणी, मन्तव्य और आर्त भविष्यवाणी भी है। उनका पूरा मन-प्राण इसी में लगा हुआ है। इसमें विदेशी भावों, ब्राह्म रीतियों आदि के विरुद्ध प्रचण्ड रोष, आम जनता के लिये प्रगाढ़ प्रेम तथा आशा, अपने गुरुदेव के प्रति ज्वलन्त भक्ति, अपने चारों ओर के जीवन के विषय में तीक्ष्ण टिप्पणियाँ – सर्वोपरि बँगला भाषा का जान-बूझकर उत्पीड़न भी है, जिसके फलस्वरूप उनके लेखन को समझना दुरूह हो उठा है, जैसे कि कार्लायल की प्रारम्भिक रचनाएँ; और इसकी रचना किसी अति विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखकर की जा रही है!!![1]

इसके बाद है काली पर उनकी बँगला कविता। उसकी एक पंक्ति इस प्रकार है – अहा, यदि तुम उनके कण्ठ से नाटकीय आवृत्ति सुन पाती –

मैं उन मूर्खों में नहीं हूँ, जो
'तुम्हें मुण्डमाला पहनाने के बाद,
आतंक से काँपते हुए
तुम्हें ''दयामयी'' कहने लगते हैं'![2]

---

१ निवेदिता यहाँ स्वामीजी की जिस बँगला पत्रिका के बारे में लिख रही हैं, वह 'उद्बोधन' है और 'सुदीर्घ पत्र' उद्बोधन में प्रकाशित 'बिलायत यात्री का पत्र' है, जिस शीर्षक को उद्बोधन में प्रकाशित होते समय बाद में बदलकर 'परिव्राजक' कर दिया गया था। हमारा अनुमान है कि इस नाम-परिवर्तन का हेतु था १८८१ ई. में 'यूरोप प्रवासी के पत्र' नामक रवीन्द्रनाथ का ग्रन्थ, जिसके बारे में स्वामीजी शायद जानते रहे हों या जानने पर भी भूल गये हों। सम्भव है कि किसी के द्वारा इन नाम-सादृश्य की ओर दृष्टि आकर्षित किये जाने पर उन्होंने नाम बदल दिया हो।

उद्बोधन पत्रिका के प्रति स्वामीजी की ममता के चिह्न उनके विभिन्न पत्रों आदि में बिखरे पड़े हैं। जब धनाभाव के कारण पत्रिका को जारी रखना कठिन हो गया था, तो स्वामीजी ने पत्रिका के लिये अपनी भ्रमण-कथा लिखनी शुरू की (इसके साथ ही अवश्य साहित्य-रचना का आनन्द भी था); और उन्होंने यह भी कहा था कि इस लेखमाला को भलीभाँति प्रचारित करके छापने से पत्रिका की बिक्री बढ़ेगी।

'परिव्राजक' ग्रन्थ बँगला साहित्य की एक असाधारण रचना है। बँगला साहित्य में चलित गद्य के इतिहास में प्रथम पर्व में स्तम्भ के रूप में खड़ा यह ग्रन्थ दूसरी ओर अपने साहित्यिक गुण के कारण प्रथम श्रेणी का है। सम्भवत: इस प्रकार की रचनाओं में यह अद्वितीय है। विशाल प्रतिभा का ऐसा स्वच्छन्द लघु रूप तथा गम्भीर लीला एक ही पात्र में इसके पहले कभी देखने में नहीं आया। यह पुस्तक बँगला साहित्य के समालोचकों द्वारा बड़ी समादृत हुई है; इसके साथ केवल इतना ही जोड़ा जा सकता है कि इस पुस्तक की पहली साहित्यिक समालोचना करने का गौरव सम्भवत: निवेदिता को ही मिला था। इसके रचनाकाल के दौरान ही पाण्डुलिपि को पढ़कर या सुनकर उन्होंने जो मत व्यक्त किये, उनकी यथार्थता तथा महत्ता असीम है। निवेदिता के मत से यह समझा जा सकता है कि स्वामीजी ने एक विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही सचेतन रूप से बँगला गद्य का उत्पीड़न किया था।

२. इस कविता का उल्लेख १३ तथा १९ जुलाई – इन दो तारीखों के पत्रों में ही प्राप्त होता है। कविता की रचना १३ या उसके कुछ पूर्व आरम्भ हुई और दो-एक दिनों के भीतर पूरी हो गयी। यह निश्चित है कि १९ के पहले पूरी हो गयी थी। इसका शीर्षक था 'नाचे उसमें माँ-काली'। स्वामीजी ने 'काली द मदर' (काली माता) कविता को प्रेरणा के क्षणों में लिखा था। उसमें अनुभूतियों को अपरोक्ष भाव से महाकाली की प्रलय-छवि को अंकित किया गया है। उस कविता के मूल दर्शन को स्वामीजी ने इस बँगला कविता के भीतर वास्तविक संसार के विभिन्न रूपों का पट

उन्होंने धूम्रपान प्राय: छोड़ दिया है, पानी भी बहुत कम पीते हैं। और इन सबके बावजूद स्वामीजी मेरे लिये मेरी दृष्टि में एक साथ ही माँ और शिशु भी हैं। अहा, पृथ्वी की इन महानतम आत्मा की अर्चना करने का सौभाग्य जिन्हें नहीं मिला, उनके जीवन का क्या कोई मूल्य भी है?

स्थापित करके दार्शनिक वक्तव्य-प्रधान कर डाला है। इसके साथ ही इसमें समुद्र-कण्ठ से मातृभक्त वीर सन्तानों के प्रति वीरेश्वर का आह्वान भी घोषित हुआ है। हम ऐसी ही कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करते हैं –

बजते भेरी-ढाक-नगाड़े, चलते वीर कँपे धरती,
तोप करे बम-बम की ध्वनि, बन्दूकें कड़-कड़-कड़ करतीं;
धूमायित है घोर रणस्थल, तोप गरजते बारम्बार,
फटता गोला उड़ जाते सब, हाथी-घोड़े और सवार ॥
थर-थर काँपे धरती, चलते, रण को लाखों वीर सवार,
लाते छीन शत्रु-तोपों को, भेद धुँआ-गोलों की मार;
आगे चलता बल का द्योतक, झण्डा – दण्ड रक्त से सिक्त,
संग चल रहे पैदल सैनिक, लिए राइफल वीरोन्मत्त;
गिर जाता जब ध्वजवाहक, ले अन्य वीर आगे चलता,
बिखरे पद-तल शव वीरों के, तो भी ना पीछे हटता ॥

देह चाहता सुख, औ चाहे चित्त विहंग सुधा-संगीत,
मन चाहे मधु-हास, प्राण आकुल होने को दु:खातीत;
छोड़ चाँदनी अति शीतल, माँगेगा कौन दुपहरी धूप,
जिसके प्राण चण्ड-रवि वह भी, चाहे स्निग्ध चन्द्र का रूप;
सुख के लिए सभी पागल हैं, कौन मूर्ख चाहे दुख-त्रास?
दुख है सुख में, विष अमृत में, कण्ठ जहर, पर मिटे न आस;
डरें रुद्र से सभी, न चाहें मृत्युरूपिणी अम्बा को,
उष्ण रक्त-सिंचित असि ले, वंशी देते जगदम्बा को ॥
सत्य तुम्हीं हो मृत्युरूपिणी, सुखद कृष्ण माया-छाया,
हृदय छेद अब दूर करो, सुख-स्वप्न और काया-माया;
तुम्हें मुण्डमाला पहना, भयभीत, कहें सब 'दयामयी',
अट्टहास से प्राण काँपते, कहें दिगम्बरि 'दैत्यजयी';
कहते हैं – 'माँ को देखूँगा', आती हो तो भग जाते,
तुम्हीं मृत्यु, तव कर से ही सब रोग-महामारी पाते ॥

रे उन्मत्त, भुला दे निज को, भयंकरी – पीछे मत देख,
दुख माँगे तू सुख पाने को, पूजा-भक्ति स्वार्थ के हेत;
अजा-कण्ठ की रक्तधार को, देख हृदय काँपे भय से,
कायर तू, यह दया नहीं है, इसका मर्म कहूँ किससे!
तोड़ो वीणा, छोड़ो प्रेमसुधा मोहक–नारी-माया,
सुदृढ़ बढ़ो, गाते समुद्र-वत्, आँसू बहें, जाय काया ॥
जागो वीर, उठो रण करने, छोड़ो मिथ्या-स्वप्न-अजात,
सिर पर आकर काल खड़ा है, भय शोभे न तुम्हें, हे तात;
दु:ख-भार इस जग का सारा, है ईश्वर का ही प्रतिरूप,
है मसान के चिता-मध्य ही, उनका मन्दिर दिव्य-अनूप ॥
जीवन का संग्राम-सतत यह, उनकी ही पूजा समझो,
सदा पराजय हो, तो भी यह, भीत करे न कभी तुमको;
स्वार्थ-लोभ-यश चूर्ण करो निज, बन जाये तव हृदय मसान,
तब तो उसमें नृत्य करेंगी, माँ-काली आनन्दित-प्राण ॥

लोकमाता पृ. ७१ (बांग्ला)

अब डायरी के विषय में। ... मैंने इसे De Gabriete – 'Of Gabriel' ('गैब्रायल का') – नाम दिया है, जिसका अर्थ है – 'मैं गैब्रायल हूँ, जो ईश्वर के सान्निध्य में दण्डायमान है।''

हमारे आचार्यदेव के लिये गैब्रायल नाम बड़ा सुन्दर लगेगा – जो शक्ति तथा दिव्य दर्शन के देवदूत हैं, जो मानव-जाति के लिये पवित्रता के महान श्वेत पद्म लाये थे।

प्रिय युम, इंग्लैंड में स्पर्श होनेवाले आगामी क्षण को मैं बड़े ही आतंक की दृष्टि से देख रही हूँ। वहाँ पूजा के मेरे इस दिव्य भावोन्माद का अन्त हो जायेगा। उस समय मानो मैंने अपने प्राणों की कलिका में जिस वस्तु को एक व्यक्ति के लिये आनन्दपूर्वक सुरक्षित रखा था, उसे अब बलपूर्वक दूसरों के लिये खुल जाना होगा। यह मेरी कैसी स्वार्थपरता थी! यह सब बताते हुए मुझे लज्जा आ रही है। तो भी, प्रिय युम, मैं जानती हूँ कि तुम्हारे अनन्त धैर्य में मेरे इस मनोभाव को भी आश्रय मिल जायेगा। ...

उस दिन वे स्वयं ही बोले, "मेरे जैसे लोग चरम की समष्टि है। मैं खूब खा सकता हूँ – मैं पूरी तौर से निराहार रह सकता हूँ; मैं खूब धूम्रपान कर सकता हूँ – मैं इसे पूरी तौर से छोड़ सकता हूँ – इन्द्रियों के संयम में मुझे जितनी शक्ति प्राप्त है, उतनी ही शक्ति मेरी इन्द्रियों में भी है। अन्यथा संयम का महत्त्व ही क्या है?"

२१ जुलाई, मिस मैक्लाउड को

आज स्वामीजी थोड़े अस्वस्थ तथा बेचैन हैं। मेरा विश्वास है कि इस समय वे सुख की निद्रा में सो रहे हैं। प्रिय युम, उनके प्रति मेरा कैसा अनुराग तथा पूजा का भाव है! इच्छा होती है कि वे कहें कि मैं हृदय निकालकर उन्हें समर्पित कर दूँ। **(क्रमशः)**

हमें ऐसी शिक्षा चाहिए, जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और देश के युवक अपने पैरों पर खड़े होना सीखें।
– स्वामी विवेकानन्द

प्रयास

स्वामी ओजोमयानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

एक युवक अपने जीवन में आने वाले उतार-चढ़ावों से टूट चुका था। वह बैठे-बैठे अपने जीवन के बिखरते पन्नों को कैसे समेटे, इसी चिंता में डूबा हुआ था, तभी उसकी दृष्टि एक चींटी पर पड़ी, जो मेज पर पड़े एक मिश्री के टुकड़े को ले जाने का भरसक प्रयास कर रही थी। वह बार-बार असफल हो रही थी, फिर भी प्रयास करना नहीं छोड़ रही थी। यह कार्य उसके लिए असम्भव लग रहा था, मानो वह कोई पहाड़ ले जाना चाह रही हो। पर वह प्रयास करती रही और अन्त में सफल हुई। युवक यह दृश्य देखकर उस चींटी के प्रयास के समक्ष नतमस्तक हो गया और उसे जीवन के लिए एक प्रेरणा मिली । वह थी, प्रयास करने की प्रेरणा।

प्रयास ! प्रयास ! प्रयास !
प्रयास – जो सफलता की कुंजी है,
प्रयास – जो असम्भव को सम्भव करे,
प्रयास – जो बाधाओं को दूर करे,
प्रयास – जो हमें लक्ष्य तक ले जाये,

यदि कोई तैरना सीखना चाहे और इसके लिए वह मात्र 'तैरना कैसे सीखें' आदि पुस्तकें ही पढ़ता रहे, तो वह कभी भी तैरना नहीं सीख सकेगा। इसके लिए तो उसे जलाशय में उतरकर प्रयास करना ही पड़ेगा। मात्र लक्ष्य बना लेने से या स्वप्न देखने से या मात्र योजना बना लेने से कुछ नहीं होता, उसे पूरा करने के लिए अथक प्रयास की भी आवश्यकता होती है। तीर तो निशाने पर उनके ही लगा करते हैं, जो तीर चलाते हैं। मनुष्य की सफलता उसके प्रयासों में छिपी हुई है। आइए, इसी सन्दर्भ में कुछ विचार करें –

प्रयास का महत्त्व

देखा गया है कि धनी पिता की संतानों को धन के अपव्यय करने में कोई कष्ट नहीं होता, पर जिसने अपने अथक प्रयासों के द्वारा एक-एक पाई जोड़कर संपत्ति जमा की हो, वह सदा उसके दुरुपयोग से बचता है। जब जीवन में कोई वस्तु अथवा कोई पद बिना प्रयास के ही मिल जाये, तब उसका महत्त्व वह उतना नहीं समझ पाता, जितना कि प्रयासों के बाद पाने पर उसे होता है।

एक आलसी व्यक्ति, जो कुछ भी नहीं करता, वह शान्ति चाहता है, पर कदापि शान्ति नहीं पाता है। वह सोचता है कि कुछ न करने से शान्ति मिलेगी, पर शन्ति तो प्रयास करने के पश्चात् ही मिलती है। अर्जुन ने क्षत्रिय होकर भी महाभारत में अधर्म के विरुद्ध युद्ध न करके शान्ति की बात कही थी, वह अपना कर्तव्य भूल गया था। तब श्रीकृष्ण ने उसे फल की चिंता न करते हुए कर्म करने का उपेदश दिया था। वास्तव में शान्ति और संतोष प्रयासों के पश्चात् ही आते हैं। हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से कुछ नहीं होता। अत: हमें आवश्यकता है कि पूरी सकारात्मकता के साथ हम प्रयास करें। कहीं अन्त में हमें यह दुख न हो कि हमने प्रयास ही नहीं किया। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, "निष्क्रियता का हर प्रकार से त्याग करना चाहिए। क्रियाशीलता का अर्थ है 'प्रतिरोध'। मानसिक तथा शारीरिक समस्त दोषों का प्रतिरोध करो और जब तुम इस प्रतिरोध में सफल होगे, तभी शान्ति प्राप्त होगी।"[१]

प्रयास कैसा हो?

वर्तमान समय में दस पदों हेतु लाखों युवक परीक्षा में बैठा करते हैं और वे असफल होकर यह कहते हैं कि उन्होंने बहुत प्रयास किया था, परन्तु उनका चयन नहीं हुआ। पर क्या वास्तव में हमारा प्रयास लाखों परीक्षार्थियों से प्रतिस्पर्धा करने के योग्य था? अत: हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि जिनका चयन हुआ, अवश्य ही उन लोगों ने हमसे अधिक प्रयास किया था। मात्र परीक्षा में बैठ जाने से किसी को सफलता नहीं मिलती। इसके लिए तो उन्हें लक्ष्य प्राप्ति हेतु समर्पित प्रयास करना होगा। यदि प्रयास करने के बाद भी हमें सफलता न मिले, तो हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि या तो हमें अपने पूर्व प्रयासों से कुछ अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है या कुछ अलग ढंग से प्रयास करने की आवश्यकता है।

कलकत्ते के श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपनी विद्वत्ता और दयालुता के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं। बचपन में वे अपने पिता के साथ कलकत्ते के एक छोटे-से घर में रहकर पढ़ाई करते थे। अत्यन्त गरीबी में दिन व्यतीत करते हुए उन्होंने पढ़ाई की थीं। कभी एक सब्जी बनाकर उसके रस से ही भोजन कर लिया करते थे तथा अगले दिन फिर उसी

सब्जी में खट्टापन देकर दो समय का भोजन कर लेते थे। कभी भात और नमक से ही काम चलाना पड़ता था, तो कभी भूखे ही रहना पड़ता था। उनके छोटे भाइयों के कलकत्ते आने के बाद उन्हें सब्जी लाने से लेकर बर्तन माँजने तक का लगभग समस्त कार्य करना पड़ता था। तथापि वे गृह-कार्य जितने समर्पित ढंग से करते थे, उसी समर्पित भाव से अपना अध्ययन भी। वे अपनी शिखा खिड़की से बाँधकर पढ़ा करते थे कि कहीं उन्हें नींद न लग जाये। कभी-कभी वे आँखों में सरसों का तेल लगा दिया करते थे ताकि उस जलन से उन्हें नींद न आ पाये। अध्ययन के लिये समय कम होने के कारण वे किताब पढ़ते-पढ़ते विद्यालय आते-जाते थे। अपने गृह-कार्य और अध्ययन के लिये उनका समर्पित प्रयास हम सबके लिए एक दृष्टान्त है।

स्वामी विवेकानन्द जी कर्म का रहस्य बताते हुए कहते हैं, ''जब तुम कोई कर्म करो, तब अन्य किसी बात का विचार ही मत करो। उसे एक उपासना के – बड़ी से बड़ी उपासना के रूप में करो, और उस समय उसमें अपना सारा तन-मन लगा दो।''

प्रयास की दिशा

यदि कोई एक गाड़ी लेकर कुछ आगे चला जाये और फिर उलटा गियर लगाकर पीछे चला आये, तो ऐसे प्रयासों से वह कभी भी गन्तव्य स्थल तक नहीं पहुँच सकता। उसी प्रकार हमारा प्रयास भी एक ही दिशा में अर्थात् एक लक्ष्य की ओर होना चाहिए। अन्यथा हम कभी भी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। दो पग ही सही, पर हमारा प्रयास यदि निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर ही रहा, तो हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करेंगे ही। पर यदि प्रयास विभिन्न ओर होने लगे, तो उससे हमारी शक्ति और समय का अपव्यय होगा और हम सफल भी नहीं हो सकेंगे। अत: हमें चाहिए कि हम अपना पूरा प्रयास अपने लक्ष्य की ओर ही लगायें।

इसी प्रकार हमें अपने आदर्श का चयन करके उसका अनुसरण करना होगा।

किसी का अन्धानुकरण भविष्य में हमारे अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा सकता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना आदर्श लेकर उसे चरितार्थ करने का यत्न करे। दूसरों के ऐसे आदर्शों को लेकर चलने की अपेक्षा, जिनको वह पूरा ही नहीं कर सकता, अपने ही आदर्श का अनुसरण करना सफलता का अधिक निश्चित मार्ग है।''[३]

प्रयास – साध्य और साधन

जिस प्रकार एक सत् लक्ष्य का होना जितना आवश्यक है, उतना ही उसके मार्ग का भी। जो लक्ष्य अनुचित प्रयासों से प्राप्त किया जाता है, वह कभी शान्ति की ओर नहीं जाता है। एक अनुचित प्रयास अगले अनुचित प्रयास को जन्म देता है। जैसे एक झूठ छुपाने को हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। जब कोई चोरी करता है और सफल हो जाता है, तब वह अगली बार पुन: चोरी करने का प्रयास करता है, परन्तु उसे सदैव डर-डरकर ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसी परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''अपने जीवन में मैंने जो श्रेष्ठतम पाठ पढ़े हैं, उनमें एक यह है कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके साध्य के विषय में। जिनसे मैंने यह बात सीखी, वे एक महापुरुष थे। यह महान सत्य स्वयं उनके जीवन में प्रत्यक्ष रूप में परिणत हुआ था। इस एक सत्य से मैं सर्वदा बड़े-बड़े पाठ सीखता आया हूँ और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्त्व में है – साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना साध्य की ओर। ... यदि हमारे साधन बिलकुल ठीक हैं, तो साध्य की प्राप्ति होगी ही।[४]

विषम परिस्थितियों में प्रयास

एक व्यक्ति समुद्र के किनारे बैठा हुआ कुछ नावों को देख रहा था, जो समुद्र में हिचकोले खा रही थीं। एक बार तो एक नाव समुद्र में से डूबकर निकली। उस नाव पर कुछ मछुआरे भी बैठे हुए थे। जब वे लोग नाव लेकर समुद्र तट पर आये, तब यह सब दृश्य देख रहा व्यक्ति कौतूहलवश उनसे मिलने गया। उसने उन लोगों से पूछा कि आप लोग की नाव जब डूब गई थी, तब क्या आप लोगों को डर नहीं लगा? मछुआरों ने कहा कि उस समय डरने से कोई लाभ नहीं होता, बल्कि उस समय तो आवश्यकता थी – भरसक प्रयास की और तब हमने अपना प्रयास नहीं छोड़ा। वास्तव में जीवन संग्राम में भी यही समीकरण लागू होता है। जब हम जीवन के दुख, विषाद या विषम परिस्थितियों में डूबने लगते हैं, तो वहाँ क्रन्दन या भय की नहीं, बल्कि आवश्यकता होती है प्रयास की। यदि हम उस स्थिति में भरसक प्रयास करें, तो हमारे जीवन की नाव भी पार लग जायेगी।

शेष भाग पृष्ठ ५४४ पर
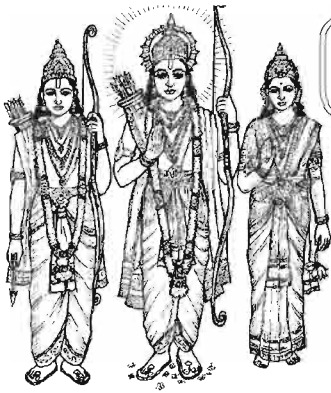
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

वैराग्य के बिना तो ज्ञान का प्रश्न ही नहीं। पर वैराग्य के बाद अब ज्ञान चाहिए। आपने देखा होगा, मक्खन को जब आप आग में चढ़ावेंगे, तो वह चिड़चिड़ आवाज करता है। लक्षण क्या है? इसका लक्षण है कि जब तक उसमें चिड़चिड़ापन रहे, मैं वैराग्यवान हूँ, तो बोले अभी पक्का वैराग्य नहीं है। जब अहं की चिड़चिड़ाहट मिट जाय, तब कहीं ज्ञान का दीपक जलेगा।

हनुमानजी महाराज तो **प्रबल बैराग्य दारुण प्रभंजन-तनय** हैं। इसलिए वे केवल पुत्र नहीं हैं। कभी तो पवनपुत्र हैं और कभी प्रभंजन तनय हैं। वायु के दो रूप हैं। एक धीमे-धीमे चलने वाला पवन और दूसरा आँधी रूप है। हनुमानजी में दोनों गुण हैं। कभी पवनपुत्र बन जाते हैं। जब भक्तों को थकान आती है, तो पवनपुत्र बन गये। जब लंका की वाटिका उजाड़ने लगे, तो सारे वृक्ष लंका के उजड़ गये, यह प्रभंजन आँधी रूप है। जब भीषण आँधी चलती है, तब उसके सामने कोई टिकता है क्या?

बन्दरों ने हनुमानजी से कहा, माँ से आपने पूछा कि मुझे भूख लगी है और उन्होंने फल खाने के लिए कहा क्या? यद्यपि माँ और पुत्र का संवाद बड़ा अनोखा है। वाटिका में बड़े सुन्दर फल लगे थे, प्रबल वैराग्य, जिन्हें लंका का इतना स्वर्ण आकृष्ट नहीं कर पाया, जिन्हें सुन्दरियाँ आकृष्ट नहीं कर पाईं, भोग आकृष्ट नहीं कर पाये, वे माँ सीता से कहने लगे –

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देख सुंदर फल रूखा।। ५/१६/७

मुझे तो बड़ी भूख लगी है और देखो न कितने सुन्दर फल हैं! बड़ा मधुर संकेत है! संकेत यह है कि वैराग्य की वह भूमिका जहाँ हनुमानजी ने सारे प्रलोभनों को समाप्त कर दिया है, पर अन्त:करण में यह अभिमान आ जाये कि कोई वस्तु है ही नहीं, जो मुझे आकृष्ट कर सके, तो हनुमानजी की तरह नन्हें बालक बन जाइये।

वे नन्हें बालक बन गये। माँ ने पुत्र से कह दिया। इसका अभिप्राय है कि अन्यत्र संसार में तो नियम है कि छोटे से बड़े बनिए और इधर साधना में नियम है, बड़े से छोटे बनिए। साधना की गति बड़ी अद्‌भुत है! हनुमानजी बड़े से छोटे बनने आए, छोटे से बड़े बनने नहीं। छोटे बने, मानों नन्हें बालक बन गये। वे कहने लगे माँ, संसार-वाटिका में तो ऐसे आकर्षक फल हैं कि वे किसी भी व्यक्ति को आकृष्ट कर लेते हैं। भूख तो किसमें नहीं होती। माँ से पूछा – क्या मैं सुन्दर फल खा लूँ? शब्द बहुत बढ़िया चुना - 'देखि सुन्दर फल' बड़े सुन्दर फल हैं। पर माँ ने कहा, सुन्दर से आकृष्ट मत होओ। क्योंकि सुन्दर होने पर भी अगर भीतर से विषैला हो, कड़ुवा हो, तब क्या होगा? माँ ने कहा, मैं सुन्दर को मधुर बनाने का उपाय बता देती हूँ, तब फल खाना। बोलीं –

रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु। ५/१७

जब भगवान का प्रसाद ग्रहण करोगे, तब वह सुन्दर न रहकर मधुर हो जायेगा। वहाँ ऐसा अनोखा संवाद चल रहा है। हनुमानजी फल खाने के बाद सोच लेते कि वाह! बड़े सुन्दर, बड़े मधुर फल हैं, लंका पर अधिकार करेंगे, तो फिर लौटकर ये फल खाया करेंगे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया –

फल खाएसि तरु तौरें लागा । ५/१७/१

वे वृक्षों को तोड़ने लगे। बन्दरों ने कहा, आपने तो फल खाने की आज्ञा ली थी, वृक्ष क्यों तोड़ने लगे? आपने बाग किसकी आज्ञा से उजाड़ दिया? हनुमानजी ने कहा, यह फल खाने का फल था। फल खाने का फल माने? बोले, भक्ति की कृपा का फल खाने के बाद भी अगर मोह की वाटिका न उजड़े, तो वह भक्ति का फल ही क्या है? जब भगवान

की कृपा मिलेगी, भक्ति मिलेगी, तो वह इन मोह की वाटिका को उजाड़ेगी। इतनी स्वर्णिम लंका को हनुमानजी ने जला दिया, इतने सुन्दर जहाँ फल लगे हों, उस बाग को उजाड़ दिया। वह कितना बड़ा वैराग्यवान रहा होगा, जिसने इतनी बड़ी स्वर्णमयी लंका को जला दिया। ऐसे हैं हनुमानजी। आज विभीषण को धर्म का फल उलटा मिला। अभी तक संसार का सुख-भोग था, सत्ता थी, पर अब हनुमानजी घर छुड़ाने आ गये। इसलिए गोपियों ने भ्रमर-गीत में यह व्यंग्य किया कि आपके भक्त करते क्या हैं?

बहव इह विहंगा भिक्षुचर्या चरन्ति

आप ऐसा पाठ पढ़ा देते हैं कि लोग राज्य को, सत्ता को, महल को, घर-बार छोड़कर भीख माँगने लग जाते हैं। मानो व्यंग्य ही है कि संसार को उस वैराग्य ने ऐसा संदेश दे दिया। यहाँ वैराग्य घर के द्वार पर खड़ा हुआ और उसने प्रभु का संदेश सुनाया ।

कल जो बात एक वाक्य में समाप्त कर दी गई थी कि कभी-कभी जगने के बाद भी अच्छे साधकों में भी, कुछ व्यामोह, कुछ भ्रम होता है, वह दृष्टि का भ्रम है। वह सूत्र बड़ा समझने योग्य है। वह संक्षेप में यह है कि दृष्टि अभी परिपक्व नहीं है। जब विभीषण के कहने पर रावण ने हनुमानजी को मृत्यु दण्ड से मुक्त कर दिया, तो विभीषण को लगा कि यह रावण की विशेषता है। यह गुण-दोष के सन्दर्भ में है। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग अब तक सोते रहे, वे भी अब जग कर सुन लेंगे। गुण और दोष का भी क्रम है। व्यक्ति का एक स्वभाव तो यह है कि वह अपने में गुण देखता है और दूसरे में दोष देखता है। उसके बाद जब आगे बढ़ता है, तो दूसरे में दोष देखना छोड़कर दूसरे में गुण देखता है। पर याद रखिए, दूसरे में गुण और दोष देखना भी उचित नहीं है। तब क्या करें? रामचरितमानस में कहीं आपको मिलेगा कि सबका गुण देखो। पर गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान से यही प्रार्थना करते हैं –

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो

श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत सुभाव गहौंगो।। वि.प. १७२/१

बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो। १७२/३

न तो दूसरे में गुण देखिए, न तो दूसरे में दोष देखिए। यह अन्तिम कक्षा की बात है। आप लोग वहाँ न पहुँच जाइएगा। अभी तो यहीं रहिए। पहले गुण और दोष को समझ लें। गुण और दोष के साथ समस्या यह है कि कहीं दोष को देखकर दोष के त्याग की वृत्ति आ जाय, तो दोष देखना भी सार्थक है। गुण देखकर अगर गुण संग्रह की वृत्ति आवे, तो गुण देखना भी सार्थक है। पर गुण को देखकर गुणी में न उलझ जाइए और दोष को देखकर दोषी से न उलझ जाइये। बड़े महत्त्व की बात है।

रावण में दोष दिखाई पड़े, तो रावण की निन्दा भरपेट कर लें और वही दोष जीवन में स्वीकार करें, तो उस दोष दर्शन का क्या लाभ है? किसी का गुण देखा, तो वह गुण जीवन में आया नहीं और गुणी में ही आसक्ति हो गई, तो यह तो लाभ के स्थान पर हानि हो गई। इसलिए अन्तिम स्थिति में गुण-दोष न दिखाई देने का अर्थ क्या हुआ? तब साधक को दोष अपने में दिखाई देता है और गुण एकमात्र भगवान में दिखाई देता है। यही वृत्ति अभी तक विभीषण में नहीं आ पाई है। यह गुण उनके संस्कार में है, पर पूरी तरह उनमें नहीं आ पाया था। हनुमानजी और विभीषण में यही अन्तर था। जब लंका से लौटकर हनुमानजी आये, तो प्रभु ने कहा कि लंका में तुमने इतने महान कार्य कर डाले। तुम्हारा तो एक-एक कार्य अद्‌भुत है। हनुमानजी चरणों में गिर गये और कहा, प्रभु क्या बताऊँ! मैं तो वहाँ से इतना सीखकर आ रहा हूँ! प्रभु, मैं सिखाकर नहीं, सीखकर आ रहा हूँ। क्या सीखा वहाँ? प्रभु आपने इतने बन्दरों में मुझे चुना। मुझे भ्रम हो सकता था कि मैं सबसे योग्य हूँ, तभी तो मुझे चुना गया। और इतनी विघ्न-बाधाओं को पार करने के बाद और भी भ्रम हो सकता था। लेकिन जिस समय मैं प्रयत्न करके भी सीताजी को नहीं खोज पाया, तब मैं समझ गया कि क्या त्याग-वैराग्य ही सब कुछ है? मैं इस लंका में सीताजी को नहीं ढूँढ़ पा रहा हूँ। तो प्रभु, आप इतने कृपालु हैं। जब मैंने विभीषण का भवन देखा, तो एक बार मेरे मन में आया कि –

लंका निसिचर निकर निवासा।

इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा। ५/५/१

लंका में संत कैसे हो सकते हैं? प्रभु मेरा ऐसे समझना तो बड़ा अनर्थकारी था। मैंने मान लिया कि संत लंका में हो ही नहीं सकता है। जब आप सर्वव्यापी हैं, तो संत भी सर्वत्र हो सकते हैं। प्रभु आपने मुझ पर कितनी बड़ी कृपा की कि विभीषण जैसे संत से मिला दिया। हनुमानजी धन्यवाद देते हैं कि महाराज, विभीषण ने अगर युक्ति न बताई होती, तो मेरा इतना सारा प्रयास सब कुछ व्यर्थ हो जाता। जब एक संत ने युक्ति बताई, तो मैंने नमस्कार किया,

प्रभु, आपके संत कहाँ नहीं हैं। ऐसा संत जो श्रीसीताजी को पाने की युक्ति बताता है। बस, दृष्टि वही है, जो व्यक्ति में अभिमान की सृष्टि न करके, अभिमान से मुक्त करे। प्रभु, इसके बाद मैं वाटिका में पहुँच गया। वहाँ मैं विचार करने लगा, यहाँ तक तो आ गया, अब माँ के सामने कैसे जाऊँ? यहाँ चारों ओर राक्षसियाँ हैं। मैं सोच रहा था, तभी रावण आ गया। अब मुझे यह चिंता हुई कि मैं तो माँ के पास जाना चाहता हूँ, यह कहाँ से रावण आ गया? यह तो महाबाधक है। प्रभु मैं समझ गया कि रावण का आना भी बहुत बड़ी कृपा थी। यही दृष्टि है। क्या? अगर रावण न आता, तो वह सत्य मेरे सामने न आता। क्या? रावण ने जिस समय किशोरीजी को डराने के लिये, वध करने के लिए तलवार निकाल ली और मारने के लिये दौड़ा, उस समय मेरे अन्त:करण में आया कि मैं कूदकर, रावण की तलवार छीनकर रावण का सिर काट लूँ। लेकिन मेरे कूदने के पहले जब मन्दोदरी ने रावण का हाथ पकड़ लिया, तो मैं गद्गद हो गया कि प्रभु, आपने कैसी कृपा करके ऐसा दृश्य दिखा दिया। अगर यह दृश्य मैं न देखता, तो यह भ्रम हो सकता था कि मैं न होता तो सीताजी को कौन बचाता। मैंने जब देखा कि आपने तो रावण की पत्नी से ही यह काम ले लिया। बल्कि मन्दोदरी की तो यह इच्छा होनी चाहिए थी कि रावण मुझे छोड़कर अब इसे पटरानी बनाना चाहता है, यह तो जितनी जल्दी मरे उतना ही अच्छा। पर ऐसा नहीं हुआ। तब मैं समझ गया कि मैं होता या न होता, आपका कार्य हो जाता। उसके बाद जब रावण चला गया, तो सोचने लगा कि अब क्या क्या करूँ? जब त्रिजटा ने कहा कि मैंने सपना देखा है कि एक बन्दर लंका में आया हुआ है, तो मैं सोचने लगा कि धिक्कार है मेरी बुद्धि को! मैं सोच रहा था कि लंका में संत कहाँ होंगे, पर यहाँ तो इतने बड़े-बड़े संत हैं कि स्वप्न में भी मुझे देखने लगे। यहाँ इतना चमत्कार! सीताजी के पास इतना बड़ा संत बैठा हुआ है। कैसी अद्‌भुत लीला है! रावण ने तो चुन-चुन कर बुरी राक्षसियों को बिठाया होगा। इसमें त्रिजटा कहाँ से आ गई? प्रभु बड़े कौतुकी हैं! इतनी प्रतिकूलताओं में कैसे वे अनुकूलता की सृष्टि कर देते हैं! प्रभु, जिस समय मैंने वह दृश्य देखा, जिसमें त्रिजटा ने कहा कि बन्दर आया हुआ है और उसने लंका को जला दिया, तो मैं चिन्तित हो गया कि प्रभु ने मुझे तो लंका जलाने की आज्ञा नहीं दी। अशोक वाटिका में युद्ध मैंने किया, राक्षसों को परास्त किया, किन्तु रावण की सभा में बंधकर मैं इसलिये गया कि मैंने सोच लिया कि जब सब कुछ आपकी कृपा से ही होता है, तो मेरा क्या निर्णय करना, मेरा क्या विचार है? मैं पूरी तरह से बँधकर गया। मैंने सोचा कि महाराज मैं बँधा हुआ हूँ, खुला होता, तो सोचकर करता। जब मैं बँधा हुआ हूँ, सोचने के लिए स्वतंत्र नहीं हूँ, कि क्या करूँ और क्या न करूँ, तो जो आपको करना हो, कराइए। जिस समय रावण ने कहा कि बन्दर को मार डालो, तब भी मैंने अपना हाथ पाँव नहीं हिलाया। मैं चाहता तो नागपाश को तोड़कर, जो राक्षस मुझे मारने के लिये दौड़ रहे थे, उनको मार डालता। लेकिन मैं चुपचाप खड़ा रहा। क्योंकि अब आपको ही रक्षा करनी है, कैसे करेंगे, आप ही सोचिये। जब विभीषण ने आकर कहा कि दूत को मारना नीति के विरुद्ध है, तो मैं गद्गद हो गया। प्रभु, कितने अद्‌भुत हैं आप! वहाँ पर श्री सीताजी को बचाने के लिए मन्दोदरी को नियुक्त कर दिया, जो रावण की पत्नी है और यहाँ रावण के छोटे भाई से वह काम ले लिया।

उसके बाद मेरे आश्चर्य की सीमा तो तब न रही, जब विभीषण के कहने पर मृत्यु दण्ड तो वापस ले लिया, पर एक नया दंड दे दिया कि इस बन्दर की पूँछ में आग लगा दो। मैंने गद्गद होकर सोचा कि प्रभु, आप मन्दोदरी, विभीषण से ही नहीं, रावण से भी अपना कार्य करा लेते हैं। अब मैं लंका जलाने के लिए कहाँ से घी-तेल-कपड़ा लाता! जब आप अपना काम मन्दोदरी से ले लेते हैं, विभीषण से ले लेते हैं और रावण से भी ले लेते हैं, तो मेरी क्या विशेषता! हनुमानजी की यह निरभिमानी दृष्टि है – सब घटनाओं में प्रभु की अनुकम्पा देखना।

जीव-विभीषण का भ्रम अभी बना हुआ था। क्योंकि वह रावण में भी कुछ अच्छाई देख रहा था। तब भगवान की अनुकम्पा हुई। भगवान ने देख लिया कि इतनी कथा-सत्संग के बाद भी कुछ भटक रहा है, भ्रम हो रहा है। तब ऐसी कस के लात पड़ी, प्रहार हुआ कि वैराग्य पहले आया। एक वैराग्य वह था, जो सत्संग के माध्यम से उपदेश दे गया और दूसरा वैराग्य वह है, जो संसार से चोट देकर गया। भगवान जब किसी जीव को अपनी ओर मोड़ना चाहते हैं और देखते हैं कि यह तो संसार से अलग ही नहीं होना चाहता है, तो वे प्रहार कराते हैं। वह लगते ही जीवरूपी विभीषण का झोंका दूर हो गया, भ्रम दूर हो गया। अरे यह रावण की सहिष्णुता थोड़े ही थी, वह तो प्रभु ने ही उस रूप

में कृपा करके प्रगट कर दिया और विभीषण धन्य हो गये। उसकी कसौटी बस एक ही है। अपमान तो न जाने संसार में कितने लोगों का होता है, पर सभी भगवान की ओर नहीं मुड़ते। मुझे स्मरण आता है, बरेली में एक कवयित्री शाान्ति देवी थीं। उसने कहा कि मैं तुलसीदास को बिल्कुल धन्यवाद नहीं देती। धन्य तो रत्नादेवी हैं, जिन्होंने फटकार कर तुलसीदास को तुलसीदास बना दिया। मैंने कहा कि फटकार से अगर तुलसीदास बनते तो घर-घर तुलसीदास बन जाते। न जाने कितने व्यक्ति नित्य फटकार सुनते रहते हैं। वे फटकार से तुलसीदास बन जाते। फटकार की विशेषता नहीं, तुलसीदास के हृदय की विशेषता है। तो इसी तरह लात तो न जाने कितने लोग खाते रहते हैं। विभीषण को लात पड़ गई, यह कोई नई बात है क्या? वह तो लोग खाते ही रहते हैं, पर उनकी इतनी मजबूत पीठ है और हृदय है कि कोई असर नहीं पड़ता, फिर चार दिन में ज्यों-का-त्यों। पर धन्य है वह जीव, प्रहार हुआ, चोट लगी और वैराग्य का उदय हो गया। कहाँ मैं बैठा हुआ हूँ, क्या मैं चेष्टा कर रहा हूँ, क्या मैं दूसरों के कल्याण की कामना कर रहा हूँ? उसकी कसौटी बस एक ही है, वह दृष्टि इतनी बदल गई, इस सभा में अगर किसी का अपमान कर दिया जाय और वह उठकर जाय, तो उसके चेहरे को देखिए, क्या स्थिति होगी, कैसा तिलमिला रहा होगा, कैसा काँप रहा होगा, बदले की भावना से कितना भरा हुआ होगा। लेकिन गोस्वामीजी ने कहा कि आज विभीषण पूरी तरह से बदल गये। इतना बड़ा अपमान हुआ, पर चले, तो तिलमिलाते हुए नहीं, यह याद करते हुए नहीं कि रावण ने क्या कहा। बड़े प्रसन्न होकर भगवान के पास चले –

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। ५/४१/४

बड़े प्रसन्न भाव से प्रभु की कृपा को याद करते हुए चले। प्रभु आपने कितनी कृपा की। सीधे नहीं, तो इस तरह से आपने मुझे अपने पास बुला लिया। तब भगवान के चरणों की याद आने लगी। यही साधक की यात्रा की कथा है। आज इतना ही, इसके बाद की चर्चा कल करेंगे

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५४० का शेष भाग

अधिकांश लोग विषम परिस्थितियाँ आने पर टूट जाते हैं, परन्तु यही वह समय होता है, जब व्यक्ति को पूरे आत्मविश्वास के साथ पुन: प्रयास करना चाहिए। हमें भी उस वीर सिपाही की भाँति होना चाहिए, जो राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अपनी अंतिम साँसों तक शत्रु पर वार करने के अंतिम प्रयास नहीं छोड़ता।

स्वामी विवेकानन्द जी ने एक बार अपने प्रिय शिष्य आलासिंगा पेरुमल को पत्र लिखकर यह संदेश दिया था, ''हर एक काम में सफलता प्राप्त करने से पहले सैकड़ों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जो उद्यम करते रहेंगे, वे आज या कल सफलता को देखेंगे।''[५]

प्रयास और दैवीकृपा

एक गाँव में बाढ़ आ गयी। सब घर डूबने लगे। तब ग्रामवासियों ने एक वट वृक्ष पर आश्रय लिया। लोग वृक्ष की शाखाओं पर बैठे हुये थे, तभी एक विशाल लकड़ी तैरते हुए आयी। बहुत-से लोगों ने साहस किया और नाव की भाँति उस पर बैठकर चले गये। कुछ देर बाद एक सैन्यदल नाव लेकर आया, तब ग्रामवासियों में से एक व्यक्ति को छोड़कर बाकी सब चले गये। वह व्यक्ति इसलिए नहीं गया कि वह विष्णु को पुकार रहा था कि वे उसे बचाने आयेंगे। इसके बाद एक हेलिकॉप्टर उसे लेने आया, फिर भी वह नहीं गया। इसके बाद जल स्तर बढ़ने से उसकी मृत्यु हो गयी और वह बैकुंठ पहुँचा। बैकुंठ जाकर उसने विष्णु की कृपा पर संदेह करते हुए उनसे बोला – प्रभु ! मैंने आपको इतना पुकारा, फिर भी आप मुझे बचाने क्यों नहीं आये? तब प्रभु बोले – वत्स ! मैं एक बार लकड़ी, एक बार नाव और एक बार हेलिकॉप्टर लेकर आया था, फिर भी तुम बैठे ही रहे, मेरे साथ नहीं आये। तुम्हें क्या लगता है कि मैं हमेशा चार हाथ लेकर सबकी सहायता करते रहूँ, मैं ही कृपा करते रहूँ और तुम चुपचाप बैठे ही रहो, तुम तनिक भी प्रयास न करो! वास्तव में दैवी कृपा के पात्र वे ही हो पाते हैं, जो प्रयास करते हैं।

भाग्य का दरवाजा भी तभी खुलता है, जब प्रयासों से उसे खटखटाया जाता है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य ३/४ **२.** वही, ३/४५ **३.** वही, ३/१५ **४.** वही ३/१७५ **५.** वही ४/३८६

श्रीमाँ सारदादेवी की अमृतवाणी

श्रीमाँ सारदा देवी जन्म जयन्ती विशेष

ए. पी. एन. पंकज, चंडीगढ़

(अल्हाबादिया प्राणनाथ पंकज जी को पाठकवृन्द ए. पी. एन. पंकज के नाम से भी जानते हैं। संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी एवं अंग्रेजी आध्यात्मिक साहित्य में इनका गहन अध्ययन है। इनकी रचनाएँ 'वेदान्त केसरी' एवं अन्य पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रहती हैं। रामकृष्ण मठ, चेन्नई से प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक के अलावा इन्होंने 'चण्डीपाठ' पर भी एक पुस्तक लिखी है, जिसका प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास द्वारा हुआ है। – सं.)

या सारदैव सकलागम-बोधरूपा
श्रीरामकृष्ण-परहंस-पतिव्रताऽभूत्।
सा सारदामणिरिति प्रथिताभिधाना
तां मातरं प्रणमत प्रियभक्तवर्याः।।

मेरे चिन्तन और लेखन का विषय 'श्रीमाँ सारदादेवी की अमृतवाणी' है। अपने भावों और विचारों के साथ श्रीमाँ की वाणी के कुछ अमृतकण प्रस्तुत करने को मैं अपना सौभाग्य और श्रीमाँ की कृपा ही मानता हूँ, जिन्होंने मुझे इस योग्य समझा कि मैं उनके गुणों और उनकी करुणा का स्मरण और प्रतिपादन कर सकूँ।

श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में देवर्षि नारद से भगवान राम ने कहा है –

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी।।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई।
तहँ राखइ जननी अरगाई।।
प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता।
प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता।।
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी।
बालक सुत सम दास अमानी।।
जनहि मोर बल जिन बल ताही।
दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही।।
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं।
पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं।। ३/४२/४-१०

भगवान कहते हैं, "जो जन अन्य सारे भरोसे त्याग कर मेरी शरण ग्रहण करते हैं, मैं उनकी रक्षा ऐसे करता हूँ जैसे बालक की रक्षा माँ करती है। छोटा, अबोध शिशु जब आग या साँप को पकड़ने दौड़ता है, तब माँ उसे आगे बढ़ कर रोक लेती है। वही बालक जब सयाना हो जाता है, तब यद्यपि माँ उससे प्रेम तो करती है, पर पहले की तरह नहीं। ज्ञानीजन मेरे सयाने बच्चों जैसे हैं, जिन्हें स्वयं पर विश्वास होता है, जबकि मेरे दास अकिंचन शिशु जैसे हैं, जो मुझ पर ही आश्रित हैं। काम-क्रोध आदि तो दोनों के शत्रु हैं। यह विचार करके विद्वान लोग मेरी भक्ति करते हैं। ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भी वे भक्ति का त्याग नहीं करते।"

अब भला स्वामी विवेकानन्द सरीखा ज्ञानी कौन होगा? हम आजीवन उनके साहित्य का स्वाध्याय करते रहें, तो भी उनके ज्ञान की थाह नहीं पा सकते। पर वे भी जब जगन्माता के समक्ष उपस्थित होते हैं, तो अबोध शिशु के समान निर्भर भाव से श्रीमाँ के चरणों में निवेदन करते हैं –

क्वाम्बा शिवा क्व गृणनं मम हीनबुद्धे-
दोर्भ्यां विधर्तुमिव यामि जगद्विधात्रीम्।
चिन्त्यं श्रिया सुचरणं त्वभयप्रतिष्ठं
सेवापरैरभिनुतं शरणं प्रपद्ये।।

"हे माँ ! तुम कौन हो? मैं हीनबुद्धि आपके गुणों का वर्णन कैसे करूँ? मेरा यह प्रयास तो ऐसा ही है, जैसे कोई जगद्धात्री को अपने दोनों हाथों में समेट लेना चाहे। आपके अभयदायी श्रीचरणों का चिन्तन तो स्वयं लक्ष्मी करती हैं। मैं तो बस आपके उन सेव्य चरणों की शरण ग्रहण करता हूँ।"

बस, मैं भी श्रीमाँ के चरणों की शरण ग्रहण करते हुए उनकी अमृतवाणी के सम्बन्ध में कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ। इस अवसर पर मुझे कवि कालिदास के शब्द स्मरण आते हैं, रघुवंश के उन शब्दों में थोड़ा-सा परिवर्तन करके मैं उन्हें माँ के चरणों में समर्पित करते हुए कहता हूँ :

क्वाम्बा तव कृपावाणी, क्व चाल्पविषया मति :।
तितीषुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।

शब्द की शक्ति के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। वह सत्य भी है। पर यह भी सत्य है कि एक ही शब्द अलग-

अलग मुखों से निकलने पर अलग-अलग प्रभाव उत्पन्न करता है। भर्तृहरि कहते हैं – **''प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते।''** – संसर्ग से ही वस्तुओं में अधम, मध्यम अथवा उत्तम गुणों की उत्पत्ति होती है। साधारण-सा शब्द भी जब दिव्य आचरणसम्पन्न महापुरुषों, दैवी विभूतियों की वाणी से निःसृत होता है, तब वह मंत्र बन जाता है, अमृतमय हो जाता है। जब वह शब्द श्रद्धा और विश्वास से ग्रहण कर लिया जाता है, तो उससे श्रोता का भावान्तरण हो जाता है। इस सन्दर्भ में 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' में एक घटना का उल्लेख किया है, जिसे स्वामी चेतनानन्द जी ने अपने बृहत् ग्रंथ Sri Sarada Devi and Her Divine Play में उद्धृत किया है।

मेरी पीढ़ी के महानुभावों ने हिन्दी फिल्मों के प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक-अभिनेता श्री सोहराब मोदी का नाम अवश्य सुना होगा। वे पारसी थे। अपनी युवावस्था में अपने बड़े भाई के कहने पर सन् १९१८ में वे बम्बई से श्रीमाँ के दर्शनार्थ कलकत्ता, बागबाजार आए थे। उस समय माँ काफी अस्वस्थ थीं और किसी को उनसे मिलने नहीं दिया जाता था। फिर भी श्रीमोदी के अनुरोध पर उन्हें माँ से मिलने की अनुमति प्राप्त हो गई और उनकी याचना पर माँ ने उन्हें मंत्र दीक्षा भी दी। माँ बंगाली में बात करती थीं और श्री मोदी हिन्दी में। पर एक दूसरे को समझने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। विदा लेते समय श्री मोदी ने कहा, ''अच्छा माँ, मैं जाता हूँ'' अब बंगाल में तो मुहावरा है, 'मैं आता हूँ'। श्री मोदी के कहने पर कि 'मैं जाता हूँ', श्रीमाँ ने कहा, ''जाश्छि बोलो ना, बोलो आश्छि'' – बेटा, जाता हूँ मत कहो, कहो कि आता हूँ। मोदीजी कहते हैं कि जब अंग्रेजी में इन शब्दों का अनुवाद किया गया, तो मैं चकित रह गया। मुझे बंगाल की इस प्रथा का ज्ञान नहीं था। मैं बम्बई लौट आया।

अब आगे जो बात श्री मोदी कहते हैं, वह ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा, ''अब इस घटना को कई वर्ष बीत गए हैं। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। इतने वर्ष फिल्म-जगत की अपनी व्यस्तताओं के चलते मैं श्रीमाँ को लगभग भूला ही रहा हूँ। अब मुझे ऊपर से बुलावा आने की प्रतीक्षा है। मेरे मन में कोई सांसारिक आकर्षण शेष नहीं रहा है। ऐसे में मेरे कानों में बार-बार श्रीमाँ के शब्द गूँजते हैं, 'जाश्छि बोलो ना, बोलो आश्छि।' आज मुझे इन शब्दों के महत्त्व का अनुभव होता है, जिन्हें मैं उस समय समझ नहीं पाया था। तब मैं माँ से दूर जाना चाहता था, पर सफल नहीं हुआ। माँ से दूर कोई नहीं रह सकता। सभी को माँ के पास लौट कर आना ही होगा।''

श्री सोहराब मोदी कहते हैं, ''यही मेरे जीवन की चरम अनुभूति है। मैं माँ के पास आ रहा हूँ।'' 'जाश्छि बोलो ना, बोलो आश्छि'। साधारण-सा मुहावरा 'आश्छि' बांग्ला में रोज इसका प्रयोग होता है। 'आता हूँ' पर माँ ने मोदीजी से कहा और यह मन्त्र बन गया। वर्षों बाद इसकी गूँज एक आध्यात्मिक अर्थ बन गई और जीवन की दिशा ही बदल गई। यही है माँ की अमृतवाणी !

सन् १९१० की बात है। ओडिशा की अपनी यात्रा के दौरान श्रीमाँ ने ६६ दिन के लिए कोठार नामक स्थान में निवास किया था। अन्य लोगों के साथ स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी के छोटे भाई, ब्रह्मचारी सत्यकाम (आशु) माँ की सेवा में थे। एक दिन माँ एकान्त में अत्यन्त उदात्त भावावस्था में थीं। उस समय आशु उनके पास थे। तब माँ ने उनसे कहा था, ''कभी कभी मैं देखती हूँ कि ठाकुर ही सब कुछ हुए हैं। मैं जिस दिशा में देखती हूँ, ठाकुर ही दिखाई देते हैं। लोग कष्ट सहन नहीं कर रहे, वे ही स्वयं कष्ट सहन कर रहे हैं। अन्धे और लंगड़े में भी वे ही दिखाई देते हैं। इसलिए जब दुखी लोग मुझे पुकारते हैं, तो मैं उन्हें राहत दिलाने दौड़ पड़ती हूँ। यहाँ लोग मुझे विश्राम करने को कहते हैं, पर मैं विश्राम कैसे कर सकती हूँ? मैं सोचती हूँ कि जो समय सोने में गँवाना है, उसे जीवों के कल्याण के लिए जप करते हुए क्यों न व्यतीत करूँ?''

श्रीमाँ के इन शब्दों में स्पष्ट है कि उनका जप करना भी अपने लिए नहीं, मानव-कल्याण के लिए है। श्रीकृष्ण ने भी तो गीता में कहा है कि मेरे लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं है, मैं लोक-संग्रहार्थ कर्म करता हूँ।

मनुष्य की पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। गीता कहती है, मन छठी ज्ञानेन्द्रिय है **– मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**। इनमें जिह्वा दो इन्द्रियों का काम करती है। यह कर्मेन्द्रिय भी है और ज्ञानेन्द्रिय भी। इससे हम बोलते भी हैं और रस ग्रहण भी करते हैं। श्रीमाँ की वाणी में कर्म करने का आह्वान भी है और इस पर साक्षात् सरस्वती विराजमान होकर हमें ज्ञान-वैराग्य का भी उपदेश देती हैं। कर्म करने पर बल देते हुए माँ कहती हैं – ''मनुष्य को

सदा कर्म करते रहना चाहिए। कर्म करने से ही कर्म-बन्धन से मुक्ति मिलेगी। पूर्ण अनासक्ति बाद में होगी। मनुष्य को क्षण भर के लिये भी कर्म किए बिना नहीं रहना चाहिए। कर्म करते रहने से मन में दुर्विचार नहीं आते। बिना कर्म किए मन में ऐसे विचार दौड़ते रहते हैं।''

इन शब्दों में मानो गीता की वाणी ही गूँज रही है –

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यासनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

उसी वाणी से माँ ज्ञान-वैराग्य की बातें कहती हैं – ''सब कुछ मिथ्या है। पति, पत्नी, यह शरीर भी। ये सब माया के कठोर बन्धन हैं। जब तक तुम इन बन्धनों से छुटकारा नहीं पा लेते, तब तक भवसागर से पार नहीं हो सकते। शरीर के प्रति आसक्ति, शरीर के प्रति आत्मभाव का त्याग आवश्यक है। यह आज है, कल नहीं। आख़िर यह शरीर है ही क्या? है तो राख की ढेरी ही ! शरीर कितना बलवान, कितना सुन्दर क्यों न हो, इसकी परिणति तो राख की ढेरी में ही है। फिर भी लोग इसमें आसक्त हैं। यह कैसी माया है !'' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

गज-बाजि-घटा भले भूरि भटा,
बनिता सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धनु धाम सरीरु भलो,
सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।।
सब फोटक साटक है तुलसी,
अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ,
जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै।

कवितावली, उ.का., ३९

मन – छठी इन्द्रिय ! मन प्रेम का स्थान है। भक्ति का स्थान है। मन प्रेमाभक्ति का स्थान है, जिसे हमने सांसारिक मोह का, आसक्ति का घर बना रखा है। इस मन को भगवान् को समर्पित कर देना ही सबसे बड़ा जप-ध्यान है। माँ कहती थीं, ''भगवान को पाने के लिए प्रेम-भक्ति के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। .. क्या वृन्दावन के गोप-गोपियों ने कृष्ण को जप-ध्यान करके प्राप्त किया था? नहीं। उन्होंने कृष्ण को अपने अनन्य प्रेम के द्वारा, 'आ रे कन्हाई, खा ले रे, पी ले रे,' यही सब करके पाया था।''

श्रीमाँ कहती थीं, ''भाव में ईश्वर के दर्शन होते हैं – इसके अतिरिक्त भगवान को भला किसने देखा है? भगवान ने किसके साथ बातचीत की है? भाव में दर्शन, भाव में बातचीत, सब कुछ भाव में ही होता है।''

गोस्वामीजी कहते हैं –

भाव बस्य भगवान, सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान, भजिअ सदा सीता रवन।।

रा.च.मा. ७/९२(ख)

गीता में भगवान घोषणा करते हैं, 'मामेकं शरणं व्रज।' माँ भी कहती हैं, ''केवल भगवान् की शरण में जाओ। तब तुम उनकी कृपा का अनुभव कर सकोगे।''

शिष्यों को आश्वस्त करते हुए, माँ स्पष्ट शब्दों में कहती हैं – ''ठाकुर ने मुझे वचन दिया था, 'जो तुम्हारी शरण ग्रहण करेंगे, मैं उनके अन्तिम समय में आकर उन्हें अपने हाथों उबार लूँगा।' डरो मत बेटा, सदा ठाकुर तुम्हारे साथ हैं और मैं भी। तुम जो भी करोगे, जहाँ भी जाओगे, ठाकुर तुम्हारे अन्तिम क्षणों में आएँगे और अपने धाम को ले जाएँगे।''

माँ, सारदा हैं – सार प्रदान करने वाली। यदि ठाकुर की वाणी में वेदों , उपनिषदों, पुराणों, गीता और रामायण आदि का सार है, तो माँ की वाणी में ठाकुर की वाणी का सार है। उनकी इस वाणी को रामकृष्ण परंपरा के महापुरुषों ने हमारे लिए सहज सुलभ कर दिया है। इस अमृत रस के एक बिन्दु को भी हम आत्मसात् कर सकें, उसे कानों तक, कण्ठ तक सीमित न रखकर, हृदय में, मन में आचरण में उतार लें, तो हम धन्य हो सकते हैं। माँ का सांसारिक जीवन जिन संघर्षों, कठिनाइयों, कष्टों, बाधाओं और पारिवारिक समस्याओं में से गुजरा था, उन्हीं की पंचाग्नि में तप कर वे कुंदन के समान निखरी थीं और उसी तपोमय जीवन के प्रसाद रूप में हमारे लिए उनकी अमृतवाणी निःसृत हुई है, ताकि हम इस दुर्लभ मानव जीवन को कृतार्थ कर सकें।

अब मैं श्रीमाँ और स्वामीजी के बीच घटित एक भावपूर्ण दृश्य का अंकन करके उपसंहार करूँगा, जिसका उल्लेख स्वामी चेतनानन्द जी ने अपनी पूर्वोक्त पुस्तक में किया है।

पाश्चात्य देशों की अपनी यात्रा समाप्त कर के २१ अप्रैल १८९७ को स्वामीजी पहली बार श्रीमाँ के दर्शन करने

शेष भाग पृष्ठ ५५२ पर

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१२)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

डकैत के हाथों में

अपराह्न का समय था। चलते-चलते देखा कि रास्ते से दूर मैदान से होकर चार लोग हमारा पीछा कर रहे हैं। मैदान ऊबड़-खाबड़ था। कभी वे चारों दिखाई देते थे और कभी छिप जाते थे। मुझे सन्देह हुआ कि ये डकैत हैं। भगत थोड़ा दुर्बल शरीर का था और उस समय थोड़ा पीछे रह गया था। मन में आया कि उनसे भागने को कह दूँ, क्योंकि उनके पास बर्तन थे और रुपये-पैसे होने की भी सम्भावना थी। परन्तु अगले ही क्षण सोचा कि इस निर्जन स्थान में वह भागकर भला कहाँ जायेगा? और चिल्लाकर कहने से डकैत लोग भी सुन लेंगे। अब ठाकुर की जो इच्छा ! हम जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलेंगे।

मैं सोचने लगा – इनमें से एक के सिर पर लाल पगड़ी है और वह कम्बल लपेटे हुए है। मैंने कलकत्ते में लाल पगड़ी और कम्बल लपेटे पहरेदारों को देखा था। हो सकता है कि ये लोग किसी जमींदार के सिपाही हों। परन्तु यह कल्पना अधिक देर नहीं टिकी। थोड़ी दूर आगे बढ़ने के बाद ही देखा कि मैदान के कोने से उसके भीतर से होकर चारों डाकू या सिपाही हमारे आगे के रास्ते पर चढ़ चुके हैं। मैंने उनसे पूछा, "नारायण सरोवर कितनी दूर है?" वे लोग चल रहे थे। उनमें से एक झटके से खड़ा होकर बोला, 'तीन कोस।' इसके बाद सभी रास्ता रोककर खड़े हो गये। इसी बीच मैं उन लोगों के पास जाकर पूछते हुए चल रहा था, "क्या तुम्हीं लोग डकैत हो? लूटकर खाते हो?" परन्तु यह बात मुख से निकलते ही सहसा एक ने मेरे गरदन पर हाथ लगाकर ढकेल दिया। मैं तत्काल बोल उठा, "मेड़े गनो, मेड़े गनो, मुँके मारयो मूँ।" इतना कहते-न-कहते मेरे पीठ पर दो लाठियाँ पड़ीं। भगवान की कृपा से लाठी पतले बाँस की थी और मेरे शरीर पर रूईभरा कुरता तथा पहनने के कपड़े आदि थे; एक पोटली में पोथी, बाघछाल आदि बँधे हुए थे।

चित्त गिरकर मैंने देखा कि उन चारों की जो मूर्ति मैंने थोड़ी देर पहले देखी थी, अब वे देखने में वैसे नहीं थे। उनके मुख अत्यन्त विकृत हो गये थे, आँखें लाल थीं और लगातार घूम रही थी। उनमें से दो के हाथों में नंगी तलवारें सूर्य की रोशनी में झलमला रही थीं। एक वृद्ध ने रूखे स्वर में कहा, 'लुगड़ा खोल।' मैंने तत्काल कौपीन के अतिरिक्त सारे कपड़े उतारकर उनके सामने डाल दिये। और कहने लगा, "मेड़े गनो, मेड़े गनो, मुँके मारयो मूँ।"

लुटेरे जल्दी-जल्दी मेरे वस्त्रों तथा कुरते के जेबों की अच्छी तरह तलाशी लेने लगे। इसी बीच भगत आ पहुँचा। वही भयावह दृश्य देखकर वह कातर स्वर में बोल उठा, "हम तो गये !" एक तो वह वैसे ही दुर्बल था और उसके सारे अंग थर-थर काँप रहे थे। उसके हाथ का लोटा और कन्धे की थैली खिसककर गिर पड़ी थी और उसकी जीभ निकल आयी थी। वह चक्कर खाकर रास्ते में ही बैठ गया।

भय के कारण उसके मुख पर आये विकृत भाव को देखकर उस संगीन हालत में भी मैं बिना हँसे नहीं रह सका। परन्तु मैंने तत्काल डकैतों से कहा, "मुझे तो इतने जोर से धक्का दिया था, परन्तु यह बड़ा दुर्बल है; वैसा करने पर मर जायेगा, तुम लोग उसके शरीर पर हाथ मत लगाना।" मैं भगत से बोला, "तुम्हारे पास जो कुछ है, सब इन्हें दे दो, बाद में मैं फिर तुम्हारे बर्तन आदि की व्यवस्था करा दूँगा।" परन्तु यह बात भला कौन सुनता और विश्वास भी भला कौन करता ! भगत हाथ जोड़कर डकैतों से कहने लगा, "भाइयो, मेरी इन सब चीजों पर हाथ मत लगाना; मैं बड़ा गरीब हूँ, एक बार चले जाने पर दुबारा नहीं जुटा सकूँगा।" मैंने देखा कि उसके अपने फटे हुए थैले पर अपने प्राणों से भी अधिक मोह-ममता है।

इधर डकैतों ने मेरे लबादे की जेबों तथा पीठ से बँधी पोटली में बाघछाल तथा कुछ पुस्तकें मात्र देखकर समझ

लिया कि यह संन्यासी सचमुच ही अकिंचन है । तब वे लोग भगत की ओर पलटे, परन्तु उसके थैले की हालत देखकर ही पीछे हट गये और उसका स्पर्श तक नहीं किया ।

बाद में उन लोगों ने आपस में सलाह करने के बाद मेरे दोनों हाथ बाँधने के लिये उन्हें पीछे ले जाकर मोड़ने को कहा, परन्तु तब तक मुझमें काफी साहस आ चुका था । मैंने सुदृढ़ स्वर में कहा, ''नहीं, हाथ बिल्कुल भी वैसा नहीं करूँगा ।'' डकैतों ने अपने तलवार म्यान में डाल लिये थे, आधा निकालकर बोले, ''हाथ पीछे की ओर नहीं किया, तो अभी काट डालूँगा ।'' मैंने वैसे ही दृढ़ शब्दों में कहा, ''चाहे जो कर लो, हाथ पीछे नहीं करूँगा ।''

तब उन लोगों ने मेरे सिर की पगड़ी को खोलने के बाद मेरे दोनों हाथों को मिलाया और उसे फिर बाँधने लगे । परन्तु थोड़ा-सा लपेटकर ही छोड़ दिया और जाने लगे। मैं बोला, ''अरे, इन गरम कपड़ों को ले जाओ । तुम लोग गरीब हो, जाड़ों में पहनना । कोई देखेगा नहीं और मैं भी किसी से नहीं कहूँगा ।'' तब उस लाल पगड़ी और कम्बल लपेटे डकैत ने मेरे चरणों की धूलि लेकर अपने सिर पर रखते हुए कहा, ''दुआ करो, महाराज ! कपड़े पहन लो ।'' इसके बाद डकैतों ने होठों पर उँगली रखकर संकेत किया, कोई बात प्रगट मत करना । मैं तब भी उन्हें बारम्बार कह रहा था, ''अरे, तुम लोग इन गरम कपड़ों को तो ले जाओ ।'' परन्तु वे चारों देखते-ही-देखते तीर के वेग से चले गये ।

नारायण-सरोवर से आशापुरी

डकैतों के चले जाने के बाद मैंने भगत के साथ धीरे-धीरे चलना आरम्भ किया । एक कोस जाने के बाद लगभग पच्चीस वैष्णवों की एक टोली मिली, जो तीर्थ-दर्शन के बाद उसी मार्ग से लौट रही थी । भगत उन लोगों के साथ घुलमिल कर बातें करने लगा । मैं चलने लगा ।

सन्ध्या के समय नारायण-सरोवर पहुँचकर सुना कि स्वामीजी पिछले दिन ही एक अन्य मार्ग से आशापुरी नामक एक देवी के स्थान पर चले गये हैं ।

लुटेरों के आक्रमण के आतंक तथा निराशा के फलस्वरूप नारायण-सरोवर में मुझे बुखार आ गया । बाद में वहाँ के महन्तजी ने मुझसे कहा, ''आपको नया जन्म मिला है । साथ में पाँच रुपये भी होते, तो आपके प्राण नहीं बचते । तीस रुपयों के लिए एक यात्री को वहीं काट डाला गया था ।''

बुखार के कारण नारायण-सरोवर में स्नान नहीं कर सका । ब्रह्मचारी महन्तजी ने एक अंगरक्षक सिपाही और एक घोड़ा दिया । मैं घोड़े पर चढ़कर सिपाही के साथ आगे बढ़ने लगा ।

नारायण-सरोवर से चलकर पहले मैंने कोटेश्वर महादेव तीर्थ का दर्शन किया । कोटेश्वर भारत के बिल्कुल पश्चिमी छोर पर स्थित है । इसके बाद ही अरब सागर है । कोटेश्वर में लिंगमूर्ति है । इसी स्थान पर शैव यात्री अपनी बाँह पर तप्त मुद्रा का निशान लगवाते हैं । कोटेश्वर तीर्थ से मैं आशापुरी की ओर चलता रहा ।

आशापुरी के मार्ग में सिपाही ने एक गाँव दिखाते हुए कहा, ''ये लोग ही डकैती करते हैं ।'' आशापुरी पहुँचकर मैंने घोड़े तथा सिपाही को वापस भेज दिया । पूछताछ से पता चला कि स्वामीजी माण्डवी की ओर चले गये हैं ।

आशापुरी में मैंने एक रात निवास किया । वहाँ एक विशाल पत्थर की शिला थी, उसी पर सिन्दूर मला हुआ था – वही देवी का स्थान था । आशापुरी कच्छ की अन्तिम उत्तर-पश्चिमी सीमा है । यह बलूचिस्तान के निकट है और धूप के लिये विख्यात है ।

देवी के पुजारियों का आचार-व्यवहार मुसलमानों के समान है । पुजारियों का नाम 'कापड़ी' है । ये लोग लहसुन-प्रिय हैं, मुरगे खाते हैं और जनेऊ नहीं पहनते । चारों ओर फैली मरुभूमि तथा वर्षा की अल्पता के कारण आशापुरी ग्राम में लोगों की संख्या काफी कम है ।

'कापड़ी' लोगों ने एक ऊँट तथा एक पथ-प्रदर्शक ऊँटचालक किराये पर ठीक कर दिया । उसने अगले गाँव तक पहुँचा दिया । इसी प्रकार (कच्छ राजा के सामन्त) हर गाँव के जमींदार एक घोड़ा तथा एक पथ-प्रदर्शक देकर अगले गाँव तक पहुँचाने की व्यवस्था करने लगे । **(क्रमशः)**

मेरा मानना है कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप आम जनता की उपेक्षा है और वह भी हमारे पतन का एक कारण है । हम चाहे जितनी राजनीति करें, उससे तब तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक कि भारत की जनता एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित तथा सुपालित नहीं होती ।

– स्वामी विवेकानन्द

वीर बालक बर्बरीक और खाटू श्याम

महाभारत की कथा हम सबको थोड़ी-बहुत पता ही है। भले ही किसी ने महाभारत कथा पूरी न पढ़ी हो, किन्तु महान पराक्रमी अर्जुन, भीम इत्यादि का नाम तो सभी जानते होंगे। भीम के पुत्र का नाम घटोत्कच था। घटोत्कच का शरीर अति विशालकाय था। घटोत्कच शब्द घट और उत्कच शब्द से बना है। इसका अर्थ है कि उनका मस्तक हाथी जैसे था और उनके सिर पर उत्कच अर्थात् बाल नहीं थे। घटोत्कच के भी एक पुत्र थे, उनका नाम बर्बरीक था। इसका अर्थ यह कि बर्बरीक के दादाजी महाबली भीम थे।

बालक बर्बरीक जन्म से ही विनम्र, सदाचारी और अच्छे गुण वाले थे। महाभारत में हम देखते हैं कि पाण्डव लोग कोई भी बड़ा निर्णय हो, भगवान श्रीकृष्ण से पूछकर ही लेते थे। श्रीकृष्ण का भी पाण्डवों के प्रति बहुत प्रेम था, क्योंकि पाण्डव हमेशा सत्य की राह पर चलते थे। भीम के पुत्र घटोत्कच और उनके पुत्र बर्बरीक की भी भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति थी। घटोत्कच अपने पुत्र बर्बरीक को द्वारका में भगवान श्रीकृष्ण के पास ले गए।

बालक बर्बरीक ने उनसे पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिए? श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, ''तुम्हारा जन्म क्षत्रियकुल में हुआ है, इसलिए पहले तुम अपार बल की प्राप्ति करो। शक्तिरूपी देवी की कृपा से बल की प्राप्ति होती है, इसलिए तुम्हें उनकी पूजा करनी चाहिए।'' श्रीकृष्ण का आदेश पाकर बालक बर्बरीक नवदुर्गा की आराधना करने लगे। तीन वर्षों तक उन्होंने देवियों का पूजन किया। देवियों ने प्रसन्न होकर बर्बरीक को वरदान में ऐसा बल दिया, जो तीनों लोकों में किसी के पास नहीं था। बर्बरीक को इतना बल प्राप्त हो गया था कि वे अकेले ही कितनी भी बड़ी सेना क्यों न हो, उसे परास्त कर सकते थे।

कुछ ही समय में पाण्डवों और कौरवों में युद्ध होने वाला था। युद्ध के पहले युधिष्ठिर ने अर्जुन से उनके योद्धाओं की शक्ति के बारे में पूछा। अर्जुन कहने लगे कि वे अकेले ही एक दिन में पूरी कौरव सेना को नष्ट कर सकते हैं। इस बात पर भीम के पोते बर्बरीक ने कहा, ''मेरे पास ऐसे दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं कि एक ही मुहूर्त में मैं पूरी कौरवसेना को पराजित कर सकता हूँ।'' भगवान श्रीकृष्ण तो सब जानते थे कि सचमुच बर्बरीक में इतनी शक्ति है, किन्तु फिर भी उन्होंने बर्बरीक से पूछा कि तुम इतनी बड़ी सेना को कैसे मार सकते हो?

बर्बरीक ने अपने अस्त्र-शस्त्र का बल दिखाकर सचमुच सबको आश्वस्त कर दिया कि वे अकेले ही पूरी कौरव-सेना को पराजित कर सकते हैं। बर्बरीक युद्धभूमि छोड़कर बिल्कुल भी जाना नहीं चाहते थे। किन्तु श्रीकृष्ण का अवतार तो धर्म की स्थापना के लिए हुआ था। यदि बर्बरीक सबको एक ही मुहूर्त में मार देते, तो जिन वीरों को वरदान में अस्त्र-शस्त्र मिले थे, उनकी मर्यादा भंग हो जाती। इसलिए श्रीकृष्ण ने धर्म की रक्षा के लिए अपना चक्र निकाला और बर्बरीक का सिर धड़ से अलग कर दिया। बर्बरीक के मरने पर उनके पिता घटोत्कच बेहोश हो गए। किन्तु उसी समय देवियाँ प्रकट हुईं और उन्होंने घटोत्कच और पाण्डवों को बताया कि पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार बर्बरीक की मृत्यु श्रीकृष्ण के द्वारा ही निश्चित थी। भगवान के आदेश से देवियों ने बर्बरीक के सिर को अमृत से स्पर्श कर उसे फिर से जीवित कर दिया। बर्बरीक का अभी सिर मात्र था। उनकी महाभारत युद्ध देखने की इच्छा थी। भगवान ने भी 'तथास्तु' कहकर उन्हें ऊपर पर्वत पर रहकर युद्ध देखने की अनुमति दी।

जब युद्ध पूरा हुआ तब भीम को लगा कि उनके ही पराक्रम से कौरव सेना पराजित हुई है, तब श्रीकृष्ण की इतनी प्रशंसा क्यों की जा रही है? तब अर्जुन, भीम और श्रीकृष्ण बर्बरीक के पास गए, जिन्होंने शुरू से लेकर अन्त तक पूरा युद्ध देखा था। बर्बरीक ने कहा कौरवों की सेना से केवल एक ही पुरुष युद्ध कर रहे थे और वे ही सबको

शेष भाग पृष्ठ ५६२ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (७४)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

३०-४-१९६१

महाराज – यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।। मन से सभी वासनाओं के लुप्त होते ही, कर्मक्षय होते ही संन्यासी हो जाओगे। किन्तु जितने दिनों तक कर्मक्षय नहीं होता, उतने दिन निष्कामभाव से कर्म करना पड़ता है। यही त्याग है।

यज्ञ, तप, दान के सम्बन्ध में ब्राह्मणों की एक ब्राह्मणीय व्याख्या है – यज्ञ का अर्थ है अग्नि, तप का अर्थ है अवनतसिर अर्थात् विनम्र होना, दान का अर्थ है तीर्थ-क्षेत्र में जाकर ब्राह्मण को दान देना। किन्तु थोड़ा शान्त मन से विचार करके देखो, तो इसका सरल स्वाभाविक-सा उत्तर है – यज्ञ का अर्थ है यजन अर्थात् ईश्वर की उपासना-पूजा-अर्चना, भजन-कीर्तन। दान के लिए अभावग्रस्त होना ही पर्याप्त है, उसका स्थान-काल पात्र नहीं है। दान का अर्थ हमेशा धन-दान ही नहीं होता है। विद्यादान, अन्नदान, यहाँ तक कि किसी को रास्ता बताना भी दान ही होगा।

तप का अर्थ भयंकर जैसा कुछ नहीं है। तप अर्थात् शरीर को कुछ कष्ट देना है – जैसे एकादशी व्रत, प्रात:स्नान यही सब। अर्थात् मन जो चाहता है, उसे न होने देना। दस वर्षों तक एकादशी व्रत करने से मन में स्वीकार्य-अस्वीकार्य का बोध जगता है तथा मन में एक दृढ़ संकल्प-शक्ति होती है, जिससे सामने अमृत लाने पर भी अप्रिय बोध होगा। तप में कोई धर्म नहीं है, यह तो एकदम व्यावहारिक है। इससे शरीर-मन-स्वस्थ रहता है।

१८-५-१९६१

प्रश्न – ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध और रामकृष्ण अवतार में थोड़ा अधिक प्रकाश है। क्योंकि इन दोनों अवतारों में समस्त पृथ्वी पर उनका भाव फैल गया। ईसाई धर्म तो बौद्ध धर्म की ही छाया मात्र है।

महाराज – जब अवतार आते हैं, तब ब्रह्मकुंडलिनी का जागरण होता है, सम्पूर्ण मानव-समाज जाग उठता है, अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों ही होते हैं। चैतन्यदेव के आविर्भाव के समय ही तो आधुनिक विश्व आरम्भ हुआ, सारे आविष्कार और खोज उसी समय से आरम्भ हुए। क्योंकि वे समष्टि-चैतन्य हैं।

ठाकुर के काल के समान अन्य किसी समय अंग्रेजी भाषा, यातायात, समाचार प्रसारित होने की सुविधा सारे संसार में प्रचलित नहीं थी। किन्तु केवल बौद्ध धर्म ही प्रथम प्रचारित धर्म नहीं है। इसके पहले भी वैदिक धर्म का प्रभाव सुदूर अमेरिका तक भी देखा गया है, वहाँ मूर्तियाँ मिली हैं। राम, कृष्ण ने सारे संसार को आन्दोलित किया है। धर्मराज्य तो केवल भारत को ही समझा जाता है, अन्यान्य देश तो नगण्य जैसे ही हैं।

अवतार किसके लिए आते हैं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता। अफ्रीका के कांगों अंचल में तो लोग बिल्कुल बर्बर थे, वहाँ क्यों नहीं आए? असली बात है कि प्रयोजन का बोध होना चाहिए। जहाँ आवश्यकता-बोध होता है, वहीं उनका आविर्भाव होता है।

सौभाग्य से श्रीकृष्ण की गीता हुई। श्रीकृष्ण ने ही एकमात्र सनातन हिन्दू धर्म का प्रचार किया है। इसमें उन्होंने अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों की ही बात कही है। उन्होंने त्याग सामने रखकर भोग करने को कहा है। चैतन्य और श्रीरामकृष्ण ने केवल निःश्रेयस की बात कही है। स्वामीजी अभ्युदय-भौतिक उन्नति की भी बात कहते हैं।

पाँच वर्ष की आयु में जब 'मैं भोक्ता' ऐसा बोध जाग्रत होता है, तब से बच्चा नए विचारों को देने पर स्वीकार करता है। छोटी आयु से गायत्री मन्त्र समझा देने से हृदय में नीलाकाश में लाल सूर्य का चिन्तन करने से ही मन एकाग्र होने लगता है, मानसिक शक्ति आती है, अभ्युदय भी अच्छा

होता है। नि:श्रेयस चाहने पर वह भी आसान हो जाता है।

ध्यान करते समय ठाकुर की श्रीमूर्ति – दोनों चरण, दोनों हाथ, कंधे पर धोती का छोर, नेत्र, मुख और दोनों रक्तिम अधरों का चिन्तन करना। इसके साथ यह भी ध्यान करना कि इस रूप की पृष्ठभूमि में वे सर्वव्यापी हैं।

संन्यास लिया नहीं जाता, संन्यास हो जाता है। घर में माँ थीं, इसीलिए नारद मुनि ने उनकी सेवा की। ज्योंही माँ मर गईं, तुरन्त नारद मुनि संन्यासी हो गए। कोई कर्तव्य नहीं रहा।

प्रश्न – यदि कभी ध्यान करने की व्याकुलता रहे, तो क्या उस समय दायित्व की उपेक्षा की जा सकती है?

महाराज – जब कभी ऐसा लगे कि मन तन्मय हो गया है, बैठे रहने पर भी मन में कोई विशेष वासना नहीं उठ रही है, तब तो कोई बात ही नहीं है। किन्तु यदि कोई दायित्व रहे, तो उसका यथासम्भव प्रबन्ध करके ही जाना चाहिए।

प्रश्न – मन की एकाग्रता की परीक्षा कर्म में होती है या योग में?

महाराज – दोनों में परीक्षा होती है – योग में अन्तर्जगत् की परीक्षा होती है और कर्म में वह व्यावहारिक हुआ है कि नहीं, इसकी परीक्षा होती है।

१९-५-१९६१

वर्षा हुई है। घास-पात, वनस्पतियों को हरा-भरा देखकर महाराज कह रहे हैं – देखो, देखो, ये सब कहाँ से आ गए। सम्पूर्ण सृष्टि अव्यक्त अवस्था में चली जाती है, पुन: सृष्टि आरम्भ होती है। वर्षा से सब नए पौधे उग आते हैं। असली बात है, बीज अव्यक्त अवस्था में था। सम्पूर्ण सृष्टि में यही एक काम चल रहा है,। तीन तरह का प्रलय है – नित्य निद्रा, नैमित्तिक मृत्यु और महाप्रलय। सुषुप्ति का समय बहुत अच्छी तरह से समझने की चेष्टा करो – उस समय मन बुद्धि में लीन हो जाता है, बुद्धि अहंकार में लीन हो जाती है और अहं अज्ञान से आवृत रहता है। जब स्वप्न देखते हैं, तब कार्य होता है – अहंकार थोड़ा वापस आता है एवं मन-बुद्धि का थोड़ा धुँधला खेल होता है। जैसे बाप सो रहा है और छोटा बच्चा चीजों को लेकर अस्त-व्यस्त करके हिला-डुला रहा है। वैसे ही, स्वप्न में भी मन कितनी जगहों पर कितने दृश्य देखता है ! मन सब कुछ मिलाकर एक दृश्य बना देता है। उस समय बाह्य जगत् का कोई प्रभाव नहीं रहने के कारण मन की सृष्टि अस्त-व्यस्त होकर रहती है। इसके अतिरिक्त, उस समय मन की अस्पष्ट कल्पनाशक्ति भी रहती है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ५४७ का शेष भाग

बागबाजार के बोसपाड़ा में पहुँचे थे। श्रीमाँ अपने कक्ष के द्वार पर मौन खड़ी थीं। सदा की भाँति उनका मुखमण्डल घूँघट में छिपा हुआ था। स्वामीजी ने श्रीमाँ को साष्टांग प्रणिपात किया। एक अद्‌भुत दृश्य था यह ! विश्वविजयी विवेकानन्द अत्यन्त विनम्रता और श्रद्धा के भावों से भरे माँ को दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। सात वर्षों के पश्चात् श्रीमाँ अपने इस प्रिय पुत्र को देख रही थीं – मौन, मानो भाव-समाधि में ही हों। पूरा वातावरण एक अलौकिक आनन्द और उदात्त भाव से सराबोर था। स्वामीजी ने माँ को प्रणाम करते समय उनके चरणों का स्पर्श नहीं किया। प्रणाम करके उठने के बाद उन्होंने उन सबको, जो उनके पीछे खड़े थे, संबोधित करते हुए, कोमल स्वर में कहा – ''जाकर माँ को प्रणाम कर लो। पर उनके चरण स्पर्श नहीं करना। वे इतनी करुणामयी, इतनी स्नेहमयी हैं कि जैसे ही कोई उनके चरण स्पर्श करता है, वे अपनी अपरिमित कृपा, असीम स्नेह और करुणा से तुरन्त उस असहाय जीव की सारी पीड़ा, सारा कष्ट अपने ऊपर ले लेती हैं। इसके परिणामस्वरूप दूसरों का कष्ट उन्हें सहन करना पड़ता है, जिसे वे चुपचाप सहन कर लेती हैं। धीरे-धीरे जाकर उन्हें प्रणाम करो, प्रार्थना करो और हृदय की गहराई से उनके आशीर्वाद की याचना करो। कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। वे निरन्तर पराचेतना की अवस्था में रहती हैं और सबके मन को जानती हैं।''

स्वामी विवेकानन्द से बढ़कर माँ को भला कौन जानता है? आइए, उनके कथनानुसार हम भी श्रीमाँ के चरणों में प्रणिपात करते हुए उनसे मौन प्रार्थना करें कि उनकी अमृतवाणी केवल पढ़ने-सुनने का विषय न रह कर हमारे हृदय, हमारे प्राण और हमारे आचरण में संचरित हो और उसका प्रकाश हमारी ऐहिक और आमुष्मिक यात्रा का आलोक-स्तम्भ बन कर हमारा पथ प्रकाशित करता रहे।

OOO

ईशावास्योपनिषद (१२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

श्रीरामकृष्ण का एक बहुत सटीक उदाहरण है। एक गाँव से एक ग्वालिन दूसरे गाँव में दूध देने के लिए आती थी। दोनों गाँवों के बीच में एक नदी थी। वह प्रतिदिन नदी पार कर एक भागवती पंडितजी के घर में दूध देने आती थी। बरसात के दिन आये तो स्वाभाविक है, ग्वालिन को दूध लाने में देर हो जाये। जब उसको नौका मिलती, तो जल्दी आ जाती और जब नौका नहीं मिलती, तो विलम्ब हो जाता। एक दिन पंडितजी ने कहा, ''तुम देर से दूध देती हो और सुबह-सुबह दूध की आवश्यकता पड़ती है ।'' ग्वालिन ने कहा, ''महाराज! आप तो जानते हैं कि मुझे नदी के तट पर नौका के लिए रुकना पड़ता है।'' ''मैं ये सब कुछ नहीं जानता! देखो, अगर समय पर तुम दूध न दे सको, तो तुमसे दूध लेना हमें बन्द करना पड़ेगा । हम दूसरी जगह से दूध ले लेंगे।'' कुछ दिन बीते। एक दिन ग्वालिन दूध लेकर आयी थी। पंडितजी भागवत की कोई कथा कह रहे थे। पंडितजी ने कथा प्रसंग में कहा कि भगवान के नाम में बड़ी शक्ति है। इतनी शक्ति है कि भगवान का नाम लेकर के मनुष्य भवसागर को पार कर लेता है। यह कथा ग्वालिन सुन रही थी। उसे प्रसंग बहुत अच्छा लगा। जब प्रसंग समाप्त हो गया, तो ग्वालिन ने पंडितजी को प्रणाम करके पूछा, ''अच्छा पंडितजी! आप आज जो कथा कह रहे थे, क्या उसमें का वह प्रसंग सत्य है?''

''कौन-सा?''

''आप कह रहे थे न कि भगवान के नाम में इतनी शक्ति है कि मनुष्य भगवान का नाम लेकर भवसागर पार हो जाता है।'' पंडितजी ने कहा, ''हाँ! हाँ शास्त्र की बात है! मैं क्या अपनी बात कह रहा था? बिल्कुल सही है, भगवान का नाम लेने से मनुष्य भवसागर पार हो जाता है।''

ग्वालिन ने कहा, ''तो महाराज! एक प्रश्न पूछूँ?''

''तू और क्या प्रश्न पूछेगी ? प्रश्न तो दूसरे लोग पूछते हैं, जो शिक्षित, ज्ञानी, पंडित हैं, तुझे भला यह प्रश्न कहाँ से आ गया?''

''नहीं, बहुत छोटा-सा प्रश्न है! आपने कहा - भवसागर पार कर लेता है। यह भवसागर क्या चीज है?''

पंडितजी जोरों से हँसे, ''मूर्ख कहीं की, अब तुझे क्या समझाऊँ कि यह भवसागर क्या है? अच्छा देख, यह गाँव की नदी है न! कितना कठिन है उसको पार करना!''

''अरे बहुत कठिन है महाराज! उस दिन तो पानी चढ़ गया था नदी में और वो रामू केवट है न, इतना बढ़िया तैराक, परन्तु उस दिन तो वह भी बिल्कुल नदी में बह गया था। किसी प्रकार उसके प्राण बचे। पार करना कठिन है।''

''हाँ!'' पंडितजी ने कहा, ''देख एक नदी को पार करना कितना कठिन है। ऐसी बहुत-सी नदियाँ मिल जायें, तो एक सागर बनता है।'' ग्वालिन ने कहा, ''सागर, सागर को पार करना कितना कठिन है!''

ग्वालिन ने अपने ढंग से हिसाब लगाया। ''एक नदी को पार करना इतना कठिन है, यदि इतनी सारी नदियाँ मिलकर सागर बने, तो वैसे सागर को पार करना असम्भव है महाराज!''

पंडितजी ने कहा, ''बहुत कठिन है, है न! भवसागर पार करना इससे भी कठिन है ।'' अब वे भवसागर की कुछ दार्शनिक चर्चा करने लगे। ग्वालिन के मत्थे कुछ पड़ा नहीं।

ग्वालिन ने कहा, ''महाराज! बस! बस! हो गया। मैं यही जानना चाहती थी कि जिस भवसागर की बात आप कह रहे थे, वह हमारे गाँव की नदी से बड़ा है या छोटा है?''

पंडितजी खूब हँसे, ''आखिर गँवार ही ठहरी! अरे कहाँ तेरे गाँव की नदी और कहाँ भवसागर!''

''ठीक है महाराज! अच्छा यह बता दीजिए, जब भगवान का नाम लेकर मनुष्य भवसागर को पार कर लेता है, तो भगवान के नाम से गाँव की नदी को पार नहीं कर सकता?''

पंडितजी ने सोचा, मूर्ख है, गँवार है। उन्होंने कहा, ''अरे क्यों नहीं हो सकता? जरूर हो सकता है। भगवान

का नाम लेकर नदी को क्यों नहीं पार किया जा सकता? ''

"ठीक है महाराज!'' वह प्रणाम करके चली गयी। दूसरे दिन से पंडितजी को ठीक समय से दूध मिल रहा है। एक दिन पंडितजी ने कहा, "क्यों री! आजकल तूने अपने लिए नाव खरीद ली क्या? पैसा बहुत हो गया है दिखता है!'' "क्यों महाराज!''

"समय पर आकर दूध दे जाती है। आजकल भी तो बरसात है, नदी चढ़ी हुई है।'' "अरे महाराज! नाव तो आपने मुझे दे दी उस दिन!''

"क्या कहना चाहती है?''

"आपने ही कहा न, कि भगवान का नाम लेने से नदी को पार कर लिया जा सकता है। जब भवसागर को आदमी पार कर लेता है, तो नदी को पार करना कौन-सा कठिन है? मैंने भगवान का नाम लिया और नदी पार हो गई।''

पंडितजी को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "तू क्या कह रही है?'' "हाँ! ठीक ही कह रही हूँ। भगवान का नाम लेती हूँ और पानी पर चलकर नदी को पार कर लेती हूँ।''

पंडितजी ने कहा, "असम्भव है! क्या तू ऐसा करती है?''

"हाँ महाराज! आपने ही तो कहा था। आज मैं लौटूँगी, तो आप मेरे साथ चलिए, देख लीजिए कि कहीं मैं कुछ गलती तो नहीं कर रही हूँ या नाम लेने में कहीं पर किसी प्रकार की भूल तो नहीं हो रही है।''

पंडितजी ने कहा, "हाँ! जरूर चलूँगा।'' पंडितजी साथ में आये। नदी ऊफनी हुई थी। ग्वालिन न तो कपड़े उठाती है, न समेटती है, बस भगवान का नाम लेकर के नदी पर यूँ चलती है, जैसे हम जमीन पर चलते हैं। अब पंडितजी इधर-उधर करने लगे। ग्वालिन ने कहा, "महाराज! आओ न! देखो तो, मैं ठीक नाम ले रही हूँ न!''

अब पंडितजी को लगा कि क्या करें? यह ग्वालिन, यह गँवार भगवान का नाम लेकर के इस प्रकार जा रही है और मैं तो इतना पंडित हूँ, विद्वान हूँ, तो क्या मैं भगवान का नाम लेकर के पानी पर नहीं चल सकता? उन्होंने भगवान का नाम लिया, नदी में उतरे और धम्म से कमर इतने पानी में गिर पड़े। अब ग्वालिन को लगा, अरे, पंडितजी क्या कर रहे हैं? "महाराज खेल मत करो। देखो, ऐसा नहीं है! उस दिन तो मैंने कहा था, रामू बह गया था। आप ऐसे नहीं हैं, जैसे आ रही हूँ, वैसे आइये न!''

अब ग्वालिन ने सोचा कि पंडितजी खेल कर रहे हैं। वे क्यों डूबेंगे?

पंडितजी ने साहस किया। भगवान का नाम जितना भी उन्हें मालूम था लिया। जितने श्लोक उन्हें याद थे, सब पढ़ने लगे। एक कदम आगे बढ़े और छाती तक पानी में गये और पानी में बह गये। पुकार मच गयी – अरे पंडितजी डूब रहे हैं, डूब रहे हैं, दौड़ो, दौड़ो। नौका वाले आये, पंडितजी पानी पीकर मूर्च्छित हो गये। उन्हें घर ले जाया गया, पेट का पानी निकाला गया। अब ग्वालिन तो हक्का-बक्का खड़ी रही। जब पंडितजी कुछ स्वस्थ हुए, तो ग्वालिन ने जाकर पूछा, "महाराज! आपने दवा दी, दवा का काम मुझ पर तो हुआ, किन्तु आप पर दवा नहीं लगी। क्या बात है?'' श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि ग्वालिन अज्ञानी है, लेकिन उसको विश्वास है। पंडितजी विद्या में रत हैं, कोरा सिद्धान्त जानते हैं, विश्वास नहीं है। ग्वालिन क्या है? वह अविद्यावाली है, पर उसे विश्वास है। ग्वालिन के पास विश्वास के बल पर पार करने की क्षमता है। इसलिये कहा कि अविद्या की उपासना करनेवाले से अधिक विद्या की उपासना करनेवाला घोर अन्धकार में जाता है, क्योंकि उसे विश्वास नहीं है, केवल कोरा सिद्धान्त है ।

अब इस दृष्टान्त की यहाँ समीक्षा करें। क्यों पंडितजी अपने ज्ञान, विद्वत्ता के बावजूद नदी को नहीं पार कर पा रहे हैं, वे नदी में डूबने लगते हैं? क्योंकि उनको विश्वास नहीं है। उनमें विद्या का अहंकार है। विद्या का जो तत्त्व है, उससे वे संयुक्त नहीं हैं। इसलिये वास्तविक जीवन में विद्या का उन पर प्रभाव नहीं पड़ रहा है। अविद्या और विद्या के उपासकों में यह अन्तर है। **(क्रमशः)**

स्वयं कुछ करना नहीं और यदि दूसरा कोई कुछ करना चाहे, तो उसकी हँसी उड़ाना – भारतवासियों का एक महान दोष है और इसी से भारतवर्ष का सर्वनाश हुआ है। हृदयहीनता तथा उद्यम का अभाव सब दुखों का मूल है। अतः इन दोनों को त्याग दो।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीमाँ सारदा देवी और गौरी माँ

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(गतांक से आगे)

कुछ दिनों बाद गौरी माँ के आग्रह से श्रीमाँ सारदा देवी का सारदेश्वरी आश्रम में आगमन हुआ। इस अवसर पर गौरी माँ ने उनकी मातृरूप में विशेष पूजा की तथा स्वरचित कीर्तन सुनाया। आश्रम का परिवेश देखकर माताजी बहुत प्रसन्न हुईं। गौरी माँ हमेशा श्रीमाँ के पास आती-जाती रहती थीं। आश्रम की समस्याओं के बारे में श्रीमाँ से परामर्श लेती थीं। बीच-बीच में आश्रम की बालिकाओं को भी लाकर श्रीमाँ से मिलाती थीं। एक दिन वे दो पंजाबी लड़कियों को श्रीमाँ के दर्शन के लिये ले गयीं। उन्हें देखते ही श्रीमाँ ने गौरी माँ से कहा, ''अरे ! गौरमणि, ये दोनों जया-विजया तुम्हें कहाँ से मिलीं? ये कई जन्मों से सांसारिक जीवन से दूर हैं। इन दोनों का जीवन उच्च कोटि का है।'' श्रीमाँ के आशीर्वाद से वे दोनों लड़कियाँ संन्यासिनी बनीं।

गौरी माँ को आश्रम के कार्य से हमेशा कलकत्ता आना पड़ता था। श्रीठाकुर का आदेश था कि कलकत्ता शहर की लड़कियों के लिये कार्य हो। इसलिए गौरी माँ ने श्रीमाँ के उद्बोधन भवन के पास ही किराये पर एक मकान लेकर आश्रम को वहीं स्थानान्तरित कर दिया। श्रीमाँ बहुत प्रसन्न हुईं। श्रीमाँ ने अपने हाथों से इस आश्रम में अपने फोटो की स्थापना की। श्रीमाँ श्रीसारदेश्वरी आश्रम को बहुत स्नेह करती थीं। वे वहाँ आकर छोटी बालिकाओं के साथ समय व्यतीत करतीं और आनन्द मनातीं। श्रीमाँ बीच-बीच में आश्रम में आकर निवास भी करती थीं। कभी-कभी तो बिना बताए ही आश्रम में आ जातीं। वे कहती थीं, ''गौरदासी के आश्रम को जो थोड़ी-सी भी सहायता करेगा, वह धन्य हो जाएगा।'' वे भक्तों को अपनी पुत्रियों को आश्रम में भेजने के लिये प्रोत्साहित करतीं। उन्होंने एक व्यक्ति को पत्र में लिखा, ''आपने अपनी पुत्री को गौरदासी के आश्रम में रखा है, यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। उसका कल्याण होगा।'' वे लड़कियों को उपदेश देते हुए कहती थीं, ''लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उनका जीवन सरल तथा पवित्र हो तथा उन्हें नित्य जप करना चाहिए, जिससे मन एकाग्र हो।''

लड़कियों को आश्रम के विद्यालय में लाने के लिये घोड़ागाड़ी थी। गौरी माँ इसी गाड़ी से माताजी को गंगा-स्नान के लिए और अन्य जगह ले जाती थीं। श्रीमाँ ने उस गाड़ी के घोड़े का नाम रखा था – 'सारदेश्वरी दास'। घोड़ा बहुत चंचल था। इसलिये एक दिन गाड़ी उलट गयी। श्रीमाँ ने वह घोड़ा बेचकर दूसरा खरीदने की गौरी माँ को सलाह दी। किन्तु गौरी माँ ने अर्थाभाव होने पर भी घोड़े को न बेचकर पिंजरापोल में रखा। एक भक्त ने उसके बदले दूसरा एक घोड़ा दान दिया। वह घोड़ा शान्त स्वभाव का था। इस घोड़े का नाम श्रीमाँ ने 'रामदास' रखा। सबसे पहले श्रीमाँ को इस गाड़ी में बैठाकर उसका शुभारम्भ किया गया। उसके बाद अन्य कार्यों के लिये उपयोग होने लगा।

गौरी माँ द्वारा रचित 'जय सारदावल्लभ' भजन श्रीमाँ को बहुत प्रिय था। श्रीमाँ हमेशा उन्हें वह भजन सुनाने को कहतीं। श्रीमाँ गौरी माँ से आश्रम की समस्याओं के बारे में पूछतीं और उन्हें सलाह देती थीं। एक दिन उन्होंने गौरी माँ से कहा, ''गौरदासी, तुम ठाकुर को आश्रम की आर्थिक समस्याओं के बारे में क्यों नहीं बताती? तुम इच्छा व्यक्त करोगी, तो वे सारा अभाव दूर कर देंगे। ठाकुर ने ही तुम्हें जीवन्त दुर्गा की सेवा करने के लिए कहा है?'' इस पर गौरी माँ ने कुछ नहीं कहा, पर श्रीमाँ के द्वारा फिर से वही बात कहने पर उन्होंने कहा, ''मैंने ठाकुर को वचन दिया है कि शुद्धाभक्ति के सिवाय कुछ भी नहीं माँगूगी, फिर धन कैसे माँगूँ?'' इस उत्तर से सन्तुष्ट होकर श्रीमाँ ने मृदु हास्य किया। उन्होंने बाद में स्वयं ही आश्रम के लिये खाद्य सामग्री की व्यवस्था की ।

सारदेश्वरी आश्रम किराये के मकान में ही चल रहा था। आश्रम की अपनी जमीन हो, ऐसी श्रीमाँ की इच्छा थी। यह बात वे गौरी माँ से कहती रहती थीं। गौरी माँ कहतीं, ''जब ब्रह्ममयी आश्रम के लिये चिन्ता कर रही हैं, तो मैं क्यों करूँ?'' श्रीमाँ के आशीर्वाद से कलकत्ता के बागबाजार में एक जगह खरीद कर स्थायी आश्रम की स्थापना हुई। इस बार भी माताजी ने आश्रम में आकर स्वत: श्रीठाकुर के साथ अपने फोटो की स्थापना की। आज भी उस फोटो की पूजा सारदेश्वरी आश्रम में होती है।

स्वामी सारदानन्दजी महाराज ने श्रीमाँ के लिये उद्बोधन भवन का निर्माण किया। श्रीमाँ जयरामबाटी छोड़कर कलकत्ता आने की इच्छुक नहीं थीं। भक्तवृंद श्रीमाँ के दर्शन के लिए

व्याकुल थे। स्वामी सारदानन्द जी ने गौरी माँ को जयरामबाटी भेजा। गौरी माँ एक छोटी बच्ची के साथ निकलीं। उन्होंने संन्यासी के गेरुए वस्त्र पहने। माथे पर पगड़ी, हाथ में दंड और उनके साथ था उनका चेला। शाम के समय वे लोग श्रीमाँ के घर पहुँचे। उन्होंने सीधे अन्त:पुर में प्रवेश किया और भिक्षा माँगने लगे। एक संन्यासी को घर में घुसते देख पगली मामी (राधू की माँ) चिल्लाते हुए बाहर आयीं। श्रीमाँ और घर के सभी लोग इकट्ठा हो गये। संन्यासी ने आगे बढ़कर श्रीमाँ को प्रणाम किया। वे आश्चर्यचकित हो गईं। संन्यासी पगड़ी फेंककर जोर-जोर से हँसने लगे। तब श्रीमाँ ने पहचान लिया और दुलार करते हुए कहा, ''अरे गौरदासी ! मैंने तुम्हें और इस बच्ची को बिलकुल नहीं पहचाना। धन्य हो तुम !''

गौरी माँ जयरामबाटी में श्रीमाँ के साथ रहने लगीं। श्रीमाँ को कलकत्ता चलने के लिये भी मनाती रहीं, पर माताजी बात को टाल देती थीं। उधर स्वामी सारदानन्द जी पत्र लिखकर श्रीमाँ के कलकत्ता आगमन के बारे में पूछने लगे। अन्त में गौरी माँ श्रीमाँ और अन्य लोगों को लेकर कलकत्ता के लिये रवाना हुईं। विष्णुपुर में एक ब्राह्मण-भक्त ने अत्यन्त श्रद्धा से श्रीमाँ को अपने घर निमन्त्रित किया, पर अन्य लोग समय के अभाव में जाने के लिये राजी न थे। गौरी माँ ने श्रीमाँ की इच्छा और भक्त का आग्रह जानकर वहाँ जाने की व्यवस्था की। गौरी माँ के माध्यम से उस भक्त की मनोकामना पूर्ण हुई। वह भक्त विष्णुपुर की मृण्मयी देवी का पुजारी था। सभी ने देवी के दर्शन भी किये। मन्दिर से स्टेशन आते समय श्रीमाँ ने गौरी माँ से कहा, ''गौरदासी ! विष्णुपुर की मृण्मयी देवी के दर्शन करने के लिये ठाकुर ने मुझे कहा था। इतने सालों बाद तुम्हारे कारण यह सम्भव हुआ।''

रेलवे स्टेशन पर आते ही निर्धन कुली-मजदूरों ने श्रीमाँ को घेर लिया। गौरी माँ स्टेशन से ही फूल लेकर आयीं और उन्होंने लोगों से कहा, ''आओ, आओ जानकी माई को प्रणाम करो। उनके चरणों में फूल चढ़ाओ।'' सभी ने प्रणाम कर फूल अर्पित किये। श्रीमाँ ने सबको आशीर्वाद दिया। रेलगाड़ी चलते ही सभी जय-जयकार करने लगे, 'जय जानकी माई की जय !''

एक बार दुर्गापूजा के समय गौरी माँ उद्बोधन भवन में निवास कर रही थीं। उन्होंने प्रतिदिन चंडीपाठ किया। उन्होंने महानवमी के दिन होम करके श्रीमाँ के चरणों में १०८ लाल कमल पुष्प चढ़ाकर श्रीमाँ से कहा, ''माँ, आज मेरे चंडी पाठ व्रत की समाप्ति हुई। सर्वार्थसाधिका चंडी के सामने चंडीपाठ करके मैं धन्य हो गयी।''

एक बार श्रीमाँ, गौरी माँ और अन्यान्य भक्त पुरी धाम गये थे। श्रीमाँ की इच्छा हुई कि अक्षयवट के नीचे बैठकर सभी प्रसाद ग्रहण करें। गौरी माँ ने आनन्द बाजार से श्रीजगन्नाथजी का प्रसाद लाकर श्रीमाँ को दिया। श्रीमाँ ने सबको गोलाकार में बैठने को कहा और वे स्वयं प्रसाद बाँटने लगीं। श्रीमाँ ने सभी भक्तों से कहा, ''अब आप लोग थोड़ा-थोड़ा प्रसाद मुझे खिलाइए।'' सबने उन्हें प्रसाद खिलाया। साक्षात् अन्नपूर्णारूपी श्रीमाँ ने भी सबको थोड़ा-थोड़ा प्रसाद खिलाया। बाद में बचा हुआ प्रसाद ग्रहण कर सभी आनन्द विभोर हो गए।

गौरी माँ कलकत्ता के एक भक्त के यहाँ कुछ दिन निवास कर रही थीं। वे एक दिन बरामदे में बैठकर पुस्तक पढ़ रही थीं। अचानक उन्होंने देखा कि गेरुआ वस्त्र पहने हुए खुले केश श्रीमाँ उनके पास आ रही हैं। पास आकर श्रीमाँ ने गौरी माँ से कहा, ''अरे, तुम यहाँ हो ! मैं तुम्हें ही ढूँढ़ रही थी।'' श्रीमाँ को देखकर गौरी माँ प्रसन्न हो गईं। उनके लिये आसन बिठाकर वे सब को बुलाने लगीं। श्रीमाँ ने उन्हें मना किया और उन्हें घर के अन्दर ले गयीं। उन्होंने गौरी माँ को जमीन पर लिटाया और धीरे-धीरे दोनों हाथ शरीर पर घुमाये। गौरी माँ को कुछ भी सूझ नहीं रहा था। वे देखते रह गयीं। श्रीमाँ ने उनसे कहा, 'बेटी, घबराना मत। मैं भी थोड़ा ले जा रही हूँ।'' इतना कहकर वे अंतर्धान हो गयीं। उसी दिन गौरी माँ को बुखार आया और दूसरे दिन उनके शरीर पर देवी के चिह्न दिखने लगे। उनकी स्थिति इतनी खराब हो गयी कि डॉक्टर ने उनके जीवन की आशा छोड़ दी। इधर उद्बोधन भवन में श्रीमाँ को वही रोग हुआ। किन्तु श्रीमाँ के आशीर्वाद से गौरी माँ उस भयानक बीमारी से बाहर आ गयीं। स्वस्थ होने के बाद श्रीमाँ के आग्रह पर कुछ दिन वे 'उद्बोधन भवन' में रहीं।

गौरी माँ कई वर्षों तक श्रीमाँ के साथ आनन्द से रहीं। श्रीमाँ के लीला-संवरण करने का समय आया। एक दिन उन्होंने गौरी माँ से कहा, ''मेरे वापस जाने का समय समीप आ गया है। देहावसान के बाद मेरी अस्थियों को अपने आश्रम में ले जाकर उनकी पूजा करना। प्रतिदिन पाँच बताशा का भोग लगाने से ही हो जाएगा।'' गौरी माँ और अन्य भक्तगण श्रीमाँ के स्वास्थ्य के लिए पूजा-यज्ञ करने लगे। अन्त में श्रीमाँ ने कहा, ''आप लोग दुख मत कीजिए। मुझे जाना ही होगा।'' गौरी माँ ने अंतिम समय तक श्रीमाँ की सेवा की।

श्रीमाँ के देहत्याग के बाद गौरी माँ ने उनकी अस्थियों को सारदेश्वरी आश्रम में प्रतिष्ठित किया। उस महोत्सव में ठाकुर की अनेक संतान उपस्थित थे। गौरी माँ ने श्रीमाँ के विरह का वर्णन एक कविता में किया था। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३६)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने सत्य-पालन के सम्बन्ध में कई बार कहा है। उसका पालन कैसे किया जाय?

महाराज – सत्य-पालन करने के लिये कितना मूल्य चुकाना पड़ता है, इसकी कल्पना भी तुमलोग नहीं कर सकते। इसलिये सत्य-पालन करूँगा ही, ऐसी प्रतिज्ञा मत करना। मन को कहना, यथासम्भव सत्य-पालन करने का प्रयत्न करूँगा। इस प्रकार सत्य-पालन करते-करते देखोगे कि सत्य के लिए कितने त्याग की आवश्यकता है।

प्रश्न – महाराज! जब हमलोग घर में थे, तब लगता था कि घर-मकान, नौकरी-ओकरी, स्वजन-परिजन, ये सभी इस मार्ग की बाधायें हैं। ये सब तो छोड़कर आ गये हैं। किन्तु अब वैसी व्याकुलता क्यों नहीं हो रही है?

महाराज – क्या व्याकुलता वृक्ष का फल है कि धप् से गिरेगा! व्याकुलता जन्म-जन्मान्तर की साधना से होती है। सर्वोपरि उनकी (भगवान की) कृपा है। ठाकुर ने कहा है – व्याकुलता होते ही अरुणोदय होता है, ईश्वर-दर्शन में अधिक विलम्ब नहीं होता है। व्याकुलता होने पर तो हो ही गया।

– महाराज! मन में शक्ति क्यों नहीं आ रही है? अत्यन्त व्याकुलता क्यों नहीं हो रही है?

महाराज – (बहुत स्नेह के स्वर में) इस बात का बार-बार चिन्तन करना कि मन में व्याकुलता क्यों नहीं हो रही है? ठाकुर से प्रार्थना करते समय भी यह कहना – "व्याकुलता क्यों नहीं हो रही है? ठाकुरजी हमें व्याकुलता दीजिए।" जप, ध्यान, प्रार्थना और अधिक करो।

– संघ-जीवन में चलने का सहज पाठ या रहस्य क्या है।

महाराज – खूब कार्य करना। केवल निर्धारित कार्य ऐसा नहीं। आवश्यकता पड़ने पर स्वेच्छा से मांगकर कार्य करना। इससे कोई कुछ कह नहीं सकेगा। मन में किसी के प्रति कोई शत्रुता न रहे। यदि वास्तव में किसी के प्रति मन में शत्रुता की भावना न रहे, तो किसी को कोई कठोर बात कह देने पर भी वह कुछ बुरा नहीं मानेगा। वास्तव में केवल कोई कठोर शब्द, हमलोगों को कष्ट नहीं देता है। कठोर शब्द के साथ व्यावहारिक शत्रुता की भावना ही हमलोगों को कष्ट देती है। इसीलिए देखा जाता है कि जिसे हम लोग सचमुच ही प्रेम करते हैं, उसे थोड़ा डाँटने पर भी, कोई कठोर शब्द कहने पर भी वह बुरा नहीं मानता है।

प्रश्न – महाराज, हमलोग लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं कि नहीं, इसे कैसे समझेंगे?

महाराज – इसे समझने के तीन मापदण्ड हैं। पहला, ठाकुर के प्रति प्रेम दिन-पर-दिन बढ़ेगा। दूसरा, लगेगा कि संशय धीरे-धीरे चला जा रहा है। तीसरा लक्ष्यप्राप्ति हेतु जो कुछ प्रतिकूल होगा, उसके प्रति आकर्षण चला जायेगा।

– महाराज! ठीक से समझ नहीं सका।

महाराज – इसे समझना बहुत सरल नहीं है। इसे समझने के लिए मन को तटस्थ करना आवश्यक है। मन विषयरंजित रहने से इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता। मन बहुत शान्त और तटस्थ रहने से समझ में आता है। फिर भी मैंने जो कहा है, वह है – इसके तीन लक्षण हैं। पहला, भक्ति-विश्वास दिन-पर-दिन बढ़ेगा। दूसरा, ठाकुर के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति आकर्षण कम होगा। तीसरा, उद्देश्य या आदर्श सम्बन्धी धारणा स्पष्ट से स्पष्टतर होगी।

– ठाकुर के प्रति प्रेम बढ़ रहा है या नहीं, इसे समझना बहुत कठिन है। यह तो हमारे पहले प्रश्न में ही अन्तर्निहित है।

महाराज – हाँ, ठीक कहते हो। भक्ति-प्रेम बढ़ रहा है कि नहीं, यह समझना भी बहुत कठिन है। फिर भी, इसे समझने के लिए दूसरे उत्तर पर ध्यान देना आवश्यक है। विषय आदि के प्रति आकर्षण कम हो रहा है कि नहीं, इसे

समझा जा सकता है।

– हाँ, वह तो समझ में आता है। महाराज, आपने जो कहा कि आदर्श या लक्ष्य के सम्बन्ध में धारणा दिन-पर-दिन स्पष्ट होगी। यह क्या स्वयं ही अपने भीतर से होगी?

महाराज – हाँ! यह अपने भीतर से होगी। बात है कि मार्ग बहुत लम्बा है। हमलोग धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं। कभी थोड़ा आगे बढ़ते हैं, फिर कभी थोड़ा आगे बढ़ते हैं। ऐसा करके कितना आगे बढ़े, यह समझना बहुत कठिन है।

– अच्छा महाराज! क्या प्रयत्न करने से व्याकुलता बढ़ेगी?

महाराज – इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय ही क्या है! चेष्टा के सिवाय दूसरा क्या उपाय हो सकता है?

– नहीं, बीच-बीच में लगता है कि केवल कुछ भाग्यशालियों के जीवन में ही व्याकुलता बढ़ती है। हमारे जीवन में सम्भवत: नहीं बढ़ेगी!

महाराज – मूल बात जानते हो क्या है, यदि हम समझ सकें कि थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ रहे हैं, तो इससे विश्वास होता है, साहस बढ़ता है। मान लो, यदि हम किसी एक खड़े पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास करें, तो किसी प्रकार भी नहीं चढ़ सकेंगे। किन्तु थोड़ी चढ़ाई, थोड़ी उतराई मार्ग से जायँ, तो थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ रहे हैं, इसे समझ सकते हैं। सबसे बड़ी बात है, विश्वासपूर्वक साधन-पथ पर आगे बढ़ने के मनोभाव को जीवित रखना। दूसरी बात है, संघ-जीवन में किसी दूसरे को आन्तरिक चेष्टा करते हुए देखकर हमारा उत्साह बढ़ता है, साहस आता है, लगता है कि मैं भी प्रयास करने पर कर सकूँगा। संघ-जीवन में यह बहुत बड़ा लाभ है।

प्रश्न – महाराज, आपने एक दिन कहा था कि संघ-जीवन में डाँट सहना बहुत बड़ा गुण है। उस सम्बन्ध में थोड़ा बताइये।

महाराज – हाँ, डाँट सहना एक बहुत बड़ा गुण है। एक बार एक ब्रह्मचारी से कोई गलती होने पर एक साधु उसे बहुत डाँट रहे थे, इतना डाँट रहे थे कि लगता है कि बहुत अधिक हो रहा है। मुझे बहुत बुरा लग रहा था। सोच रहा था कि इतना ठीक नहीं हुआ। लड़के का तो मन खराब हो जायेगा। वह दुखित हो रहा है, देखकर मुझे बहुत बुरा लग रहा था। साधु ने तो इतना डाँटा, किन्तु ब्रह्मचारी ने एक वाक्य भी जोर से नहीं कहा। केवल अन्त में कहा – 'महाराज, गलती हो गयी है।' इतनी सहजता से गलती स्वीकार करने पर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई थी, वह बात मुझे अभी भी याद है। किसी प्रकार से अपने पक्ष का समर्थन करने की चेष्टा न कर, कोई तर्क न कर, युक्ति नहीं दिखाकर, धीर-स्थिर भाव से सहजता से गलती स्वीकार करना एक बहुत बड़ा गुण है। इस सम्बन्ध में कालीकृष्ण महाराज के जीवन की एक घटना कहता हूँ। किसी से कोई एक गलती हो गयी। स्वामीजी ने सोचा कि इसे कालीकृष्ण महाराज ने किया है। उन्होंने उन्हें बहुत डाँटा। कालीकृष्ण महाराज ने 'हूँ' शब्द तक नहीं किया। बाद में स्वामीजी को ज्ञात हुआ कि यह गलती कालीकृष्ण महाराज ने नहीं की है। उन्होंने तुरन्त उन्हें बुलाकर पूछा – ''अरे, मैंने तुम्हें इतना डाँटा, तुमने तो कहा नहीं कि तुमने वह गलती नहीं की है।'' कालीकृष्ण महाराज ने कहा, ''किसी-न-किसी के ऊपर से तो वह आँधी जाती।'' **(क्रमश:)**

माँ सारदा के चरण-रज-विशेष

सुरोत्तमा ओझा, राँची

बिहार प्रदेश में कोइलवर ग्राम।
चरण पड़े माँ सारदा के इस धराधाम।।
गंगा स्नान और कर पूरण भक्त-आस।
श्रीमाँ ने किया यहाँ, प्रवास दो मास।।
आरा जिले से यह आठ मील दूर है।
स्वास्थ्य योग्य यहाँ जलवायु भरपूर है।।
बहती हैं गंगा बड़ा दृश्य रमणीय है।
मृग-कुल की कुलाँच सदा दर्शनीय है।।
सीधे सरल ग्रामवासी कितने भोले-भाले।
मिलते आ माँ से हो भक्ति-मतवाले।।
लौट गई माँ जयरामबाटी दो मास बाद।
भक्तों को दे दर्शन अभय आशीर्वाद।।
धन्य हुआ कोइलवर और बिहार प्रदेश।
पड़े जहाँ सारदा के चरण-रज-विशेष।।

चार सरल बातें : दो को भूलो और दो को याद रखो

स्वामी मेधजानन्द

हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्यों न हों, लोक-व्यवहार के लिए थोड़ा-बहुत समय देना पड़ता है। लोक-व्यवहार में हमारे सगे-सम्बन्धी, मित्र, व्यापार अथवा कम्पनी में कार्य करने वाले हमारे सहयोगी सभी आ जाते हैं। जीवन-गठन के लिए भी यह कुशल लोक-व्यवहार अत्यावश्यक है। बहुत-सी बातें हम दूसरों के सम्पर्क में आकर सीखते हैं। किन्तु छोटी-छोटी बातों को लेकर कभी-कभी जीवन बोझिल-सा हो जाता है। ये बातें होती तो बेसिर-पैर की हैं, किन्तु मन में अनेक प्रकार की उलझनें तैयार कर देती हैं।

यहाँ हम चार सरल बातों की चर्चा करेंगे, जिनका सम्बन्ध हमारे दैनन्दिन जीवन से है। इसमें दो को हमें भूलते रहना है और दो का सदैव स्मरण रखना है।

सबसे पहली बात, हम दूसरों के लिए जो भी अच्छे कार्य करें, उन्हें भूल जाएँ। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अच्छा कार्य करते रहें, दूसरों का भला करते रहें, किन्तु दूसरों से वैसे व्यवहार की अपेक्षा न करें। उदाहरण के तौर पर हमने अपनी जन्म-दिन की पार्टी पर अपने मित्र को निमन्त्रण दिया। कुछ दिनों के बाद उसी मित्र का जन्मदिन आता है और वह अपनी पार्टी में हमें नहीं बुलाता है। तब हम सोचने लगते हैं कि हमने तो उसे अपनी पार्टी में बुलाया और उसने हमें नहीं बुलाया। बस, यहीं से अनबन शुरू हो जाती है और हमारी मानसिक ऊर्जा का अपव्यय होता है। इसके अलावा हमने जो दूसरों का भला या अच्छा कार्य किया है, उसके बारे में सोचने से हमारा अहंकार भी बढ़ जाता है। जब उस अहंकार को थोड़ी भी ठेस पहुँचती है, तो हमारी शान्ति भंग हो जाती है। अहंकार जितना बढ़ेगा, मन उतना ही अशान्त होगा।

दूसरी बात, यह कि दूसरों ने हमसे जो अनुचित व्यवहार किया है, उसे हम भूल जाएँ। इतिहास की ओर दृष्टि डालें, तो अनेक लड़ाइयों में मूल कारण पुश्तैनी शत्रुता होती है। व्यवहार में भी हमसे कोई यदि अनुचित बात कह देता है, तो हम जीवन-भर उसका स्मरण रखते हैं। ऐसी अनेक कटु बातों को हृदय में दबाने से जीवन कुंठित हो जाता है, मानो पूरा जीवन कोई अपने सिर पर व्यर्थ बातों को बोझ लेकर चल रहा हो। जो बातें हमारे जीवन के लिए उपयोगी नहीं हैं, उनकी उपेक्षा करना ही श्रेयस्कर है। यह एक कला है – द *आर्ट ऑफ इग्नोरिंग,* अर्थात् व्यर्थ बातों की उपेक्षा करते रहना। हमारी ९० प्रतिशत ऊर्जा इसी में अपव्यय हो जाती है। यदि हमें जीवन में संरचनात्मक कार्य करना है, तो दूसरों के द्वारा किए गए छिटपुट अनुचित व्यवहार को भूल जाना चाहिए।

उपरोक्त दो बातें कही गईं, जिन्हें हमें भूलना है। अब जब उन्हें भूलना ही है, तो उनका यहाँ उल्लेख क्यों किया गया? यह इसलिए कि हम उन्हें भूल नहीं पाते हैं और हमारा वैचारिक जगत हमेशा द्वन्द्वमय रहता है। दो अन्य बातें जिनका हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए, अब उनकी चर्चा करेंगे।

तीसरी बात, इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं रहता। यह संसार परिवर्तनशील है। एक नवयुवक, जिसके सम्मुख उद्दाम यौवन और अनन्त सम्भावनाएँ हैं, उसके लिए संसार की परिवर्तनशीलता को समझना कदाचित दुष्कर हो सकता है। किन्तु यह एक ऐसा सिद्धान्त है, यदि इसकी ठीक-ठीक धारणा हो जाए, तो हम व्यर्थ बातों को लेकर अधिक माथापच्ची नहीं करेंगे। दृष्टान्त के तौर पर हम बाजार से सुगन्धित फूलों की एक माला खरीदते हैं। उस माला की महक से हमारा कमरा सुवासित हो उठता है। किन्तु यही माला एक-दो दिन में कुम्हला जाती है और हम उसे फेंक देते हैं। माला खरीदने के समय हमें यह भलीभाँति जानकारी होती है कि यह एक-दो दिन तक ही चलेगी । उसका उपयोग कर उसे फेंकने से हमें कोई दुख भी नहीं होता। ठीक ऐसा ही दृष्टिकोण जीवन के प्रति होना चाहिए। संसार की परिवर्तनशीलता का बोध जितना दृढ़ होगा, दूसरों से हमारा व्यवहार भी उतना ही मधुर होगा और जीवन में हम चिरशान्ति का अनुभव करेंगे।

चौथी बात, जिसका हमें स्मरण करना है, वह यह कि

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

उसके परिवार को कष्ट होगा !

लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया, भोपाल

यह पत्रिका जो आपके हाथों में है, इसका शुभारम्भ स्वामी आत्मानन्द जी महाराज द्वारा वर्ष १९६३ में हुआ था। महाराजजी अत्यन्त परिश्रम के साथ पत्रिका के लेखों का सम्पादन करते थे। मैं प्रतिदिन संध्या के समय महाराजजी से लेख लेकर 'नवभारत प्रेस' जाया करता था। उस समय नवभारत प्रेस तेलघानी नाका, रायपुर के पास था। एक लेख प्रेस में देकर प्रूफ रीडिंग के लिए पहले दिन का दिया हुआ लेख महाराजजी के लिए लेकर आता था। इसी प्रकार क्रम चलता था। एक दिन संध्या को मैं महाराज जी के कमरे में गया। महाराजजी उस दिन किसी कार्य में ज्यादा व्यस्त थे। उन्होंने मुझसे कहा, "अरे बैठ, लेख तैयार नही है, मैं तुझे अभी देता हूँ।" तत्पश्चात् महाराजजी ने 'Vedanta and the West' पत्रिका को निकाला और उसके एक लेख का अनुवाद करने लगे। उन्होंने कुछ ही मिनटों में मेरे देखते-ही-देखते लेख का हिन्दी अनुवाद कर मुझे दे दिया। मैं बहुत चकित हो गया। उन्होनें अनुवाद ऐसे किया, जैसे पहले ही किया हुआ हो और उन्होंने मात्र नकल कर दी हो। न ही उन्हें शब्दकोष देखने की आवश्यकता हुई और न ही उन्हें अनुवाद करते समय कुछ सोचना पड़ा। उनकी प्रतिभा असाधारण थी। उनका अपने मन पर अद्‌भुत नियंत्रण था। एक बार श्रद्धेय स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज रायपुर आए थे। महाराज का प्रवचन अंग्रेजी में हुआ। श्रोताओं की सुविधा के लिए स्वामी आत्मानन्द जी ने महाराज जी का प्रवचन शब्दश: वहीं मंच पर हिन्दी भाषा में अनुवाद कर श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया। ऐसा कई बार कई स्थानों पर होता था। श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्दजी, स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज के भी प्रवचनों का वे तत्काल शब्दश: मंच पर ही अनुवाद कर श्रोताओं के सम्मुख बोल देते थे।

यह घटना उस समय की है, जब मैं पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र, रायपुर का प्राचार्य था। हमारे कार्यालय में एक चपरासी था, जो इंजीनियरिंग कॉलेज के पीछे रहता था। सुबह वह जल्दी आकर कार्यालय की सफाई करता और पानी आदि भर दिया करता था। कुछ समय से वह एक डुप्लीकेट चाबी के द्वारा 'विवेकानन्द साहित्य' के विक्रय की राशि में से कुछ रुपए निकाल लिया करता था। एक दिन वह रंगे हाथों पैसे चोरी करते हुए पकड़ लिया गया। स्वामी आत्मानन्दजी महाराज को यह बात बताई गई। तब उन्होनें कहा कि जब इन्दुरिया ऑफिस आ जाए, उसे मेरे पास भेजना। आश्रम आने पर मुझे यह बात बताई गई, मुझे बुरा लगा। मैने सोचा महाराजजी मेरे ऊपर नाराज हो सकते हैं। मैं महाराजजी के पास गया और उनसे कहा, "महाराज, उसको नौकरी से हटा देते हैं।" महाराज जी कुछ लिख रहे थे। मेरी ओर बिना देखे उन्होंने कहा, "तुम्हें काम करने के लिए क्या महात्मा गांधी जैसे लोग मिलेंगे, दूसरा आएगा तो उसमें भी कुछ कमी होगी। जा, उससे पूछ कि उसने अभी तक कितने पैसे निकाले हैं और हर महीने उसके वेतन से थोड़ा-थोड़ा रुपये काटते जाना, पूरा वेतन मत काटना।" मैं महाराज की बात सुनकर रोमांचित हो गया। उनकी व्यावहारिक सोच, विशाल हृदय, जो चोरी करने वाले के परिवार के बारे में भी सोचता था कि पूरा वेतन काटने से उसके परिवार को कष्ट होगा। एक सच्चे साधु और सामान्य व्यक्ति के व्यवहार के अंतर को देखकर मैं गद्‌गद हो गया। ऐसे संत पुरुष के सान्निध्य में कार्य करने का अवसर प्राप्त कर मैं अपने आपको धन्य अनुभव करने लगा। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

इस परिवर्तनशील जगत में एक ऐसी वस्तु है, एक ऐसी सत्ता है, जो हमेशा रहती है, जिसका कभी भी परिवर्तन नहीं होता। उसे हम भगवान, ईश्वर किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। जिस प्रकार छोटे बच्चे एक हाथ खम्बे को पकड़कर और दूसरा हाथ खुला छोड़ गोल-गोल घूमते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार हमें भी अपने जीवन में एक सर्वोच्च चिरस्थायी नैतिक सिद्धान्त अथवा नित्य सत्ता को केन्द्र में रखकर अपने कार्य करने चाहिए।

ये चार बातें – दो को भूलना और दो का स्मरण रखना, इन्हें हम जीवन में उतारने का प्रयत्न कर सकते हैं। स्वयं के द्वारा किए अच्छे कार्य और दूसरों के द्वारा किए गए बुरे व्यवहार को भूलना है। साथ ही इस संसार की परिवर्तनशीलता और चिरस्थायी सत्ता अर्थात भगवान का स्मरण रखना है। ○○○

(यह लेख वेदान्त सोसायटी ऑफ बोस्टन के प्रभारी स्वामी त्यागानन्द जी महाराज द्वारा आई.आई.टी. चेन्नई में दिए गए व्याख्यान Four Simple Excercises पर आधारित है। श्रद्धेय महाराज जी का यह व्याख्यान Vivekananda Study Circle, यू-ट्यूब, इन्टरनेट पर उपलब्ध है । – ले.)

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (६)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

आचार्य रामानुज ब्रह्मसूत्र (१.१.१) के भाष्य में कहते हैं, "जैसे तेल को एक पात्र से दूसरे पात्र में ढालने पर, वह अखण्ड धारा के रूप में गिरता है, वैसे ही (ध्येय वस्तु के) निरन्तर स्मरण को ध्यान कहते हैं। जब (ईश्वर के विषय में) इसी प्रकार के ध्यान की अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो सारे बन्धन टूट जाते हैं।" शास्त्रों में इसी प्रकार के निरन्तर स्मरण को मुक्ति का साधन बताया गया है।

"फिर, यह 'स्मरण' ही 'दर्शन' के समान है, क्योंकि इसका वही तात्पर्य है जो मुण्डकोपनिषद् के इस वाक्य का – 'जब उस दूर तथा निकट के पुरुष का दर्शन होता है, तो हृदय की ग्रन्थियाँ छिन्न हो जाती हैं, सारी शंकाएँ मिट जाती हैं और सारे कर्मफल क्षीण हो जाते हैं।' जो निकट है, उसे देखा जा सकता है, परन्तु जो दूर है, उसका तो 'स्मरण' मात्र ही किया जा सकता है। उनका तात्पर्य यह है कि इस तरह के 'स्मरण' को 'दर्शन' के समकक्ष मानना चाहिये। प्रगाढ़ हो जाने पर यह 'स्मृति' ही 'दर्शन' का रूप धारण कर लेती है।... इस निरन्तर स्मृति को ही 'भक्ति'[१] शब्द द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।"[२]

धर्म की बातें सुनने या तोते की भाँति कुछ सिद्धान्तों को रट लेने मात्र से काम नहीं चलेगा; धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी होगी। उसे बुद्धि के द्वारा केवल स्वीकार कर लेना भी निरर्थक है। धर्म को हमारे भीतर प्रवेश करना चाहिये। अत: परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास रखने का सबसे बड़ा प्रमाण यह नहीं है कि हमारी बुद्धि उसको स्वीकार करती है, बल्कि हम उसके अस्तित्व पर इसलिये विश्वास करते हैं कि प्राचीन काल के तथा वर्तमान काल के लोगों ने भी उसका दर्शन किया था। ... हमें इस बात को भलीभाँति समझ लेना चाहिये, क्योंकि हम इसे जितना ही समझेंगे, हमारी साम्प्रदायिकता उतनी ही कम होगी, क्योंकि वही व्यक्ति यथार्थ धार्मिक हो सकता है, जिसने ईश्वर का अनुभव किया है, उन्हें देखा है। केवल ऐसे ही व्यक्ति के हृदय की गाँठें कट जाती हैं और उसके सारे संशय दूर हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति अपने सारे कर्मफलों से मुक्त हो जाता है।[३]

(ऐसा होने के बाद) तुम शंका भी भला कैसे कर सकते हो? विभिन्न विद्याओं तथा दर्शनों आदि को लेकर होने वाले झगड़े तथा विवाद तुम्हें बड़े मूर्खतापूर्ण तथा बचकाने प्रतीत होंगे। तुम इन सब पर मुस्कुराओगे। सारी शंकाएँ मिट जायेंगी। समस्त कर्मों का क्षय हो जायेगा। सारे कर्म नष्ट हो जायेंगे।

हिरणमये परे कोशे
विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्-
तद्-यदात्मविदो विदुः।।२.२.९।।

वह ब्रह्म किसी भी अपवित्रता से रहित, अवयव से रहित और उस स्वर्णिम कोश के परे स्थित है। वह प्रकाश-स्वरूप तथा समस्त ज्योतियों की ज्योति है – आत्मज्ञानी लोग इसी रूप में उसकी अनुभूति करते हैं।

जब तुम ऐसा कर लेते हो, तब –

१. ध्यानं च तैलधारावद्-अविच्छिन्न-स्मृति-सन्तान-रूपम् – 'ध्रुवा स्मृति: स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष:' (छान्दोग्य उप. ७.२६.२) इति ध्रुवाया: स्मृते: अपवर्ग-उपायत्व-श्रवणात्। सा च स्मृति: दर्शन-समानाकारा – 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' (मुण्डक उप. २.२.८) इति अनेन-ऐक्यार्थ्यात्। एवं च सति – 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य:' (बृहदा. उप. २.४.५) इति अनेन निदिध्यासनस्य दर्शन-रूपता विधीयते। भवति च स्मृते: भावना-प्रकर्षात् दर्शन-रूपता। वाक्यकारेण एतत् सर्वं प्रपञ्चितम्। 'वेदमनुशासनं स्यात् तद् विषये श्रवणात्।' इति सर्वासु उपनिषत्सु मोक्ष-साधनतया विहितं वेदनं उपासनं इति उक्तम्। ... 'उपासनं स्याद् ध्रुवानुस्मृति: दर्शनात् निर्वचनात् च।' इति तस्यैव वेदनस्य उपासन-रूपस्य असकृद् आवृत्तस्य ध्रुवानुस्मृतित्वम्।... एवंरूपा ध्रुवानुस्मृति: एव भक्ति-शब्देन अभिधीयते, उपासन-पर्यायत्वाद् भक्तिशब्दस्य।

२. वही, खण्ड ४, पृ. ६-७

३. वही, खण्ड ५, पृ. २६९

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।२.२.१०।।

न तो सूर्य उसे आलोकित कर सकता है, न चन्द्रमा और न तारे ही। उस स्थान को बिजली की चमक भी उद्भासित नहीं कर सकती। वह मन से जुड़ा है और मन की गहराई में स्थित है। उसी के आलोक से बाकी सब कुछ प्रकाशित होता है; भीतर उसी के आलोकित होने पर पूरा मनुष्य आलोकित हो उठता है। उसी के प्रकाश से सारा ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता है।

उपनिषदों का अध्ययन करते समय ऐसे श्लोकों को बाद में कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

हिन्दू तथा यूरोपीय चिन्तन-शैली में पार्थक्य यह है कि जहाँ पाश्चात्यों में 'विशेष' का अध्ययन करके सत्यों तक पहुँचा जाता है, जबकि हिन्दू इसके विपरीत मार्ग अपनाता है। उपनिषदों के समान दार्शनिक उदात्तता अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलती।

मुण्डक उपनिषद् तुम्हें इन्द्रियों के परे सूर्यों तथा तारों से भी अनन्त गुना उदात्त अवस्था में ले जाती है। अंगिरस ने प्रारम्भ में जागतिक उदात्तता के माध्यम से परमात्मा के निरूपण का प्रयास किया; बताया कि पृथ्वी उसके पाँव हैं, आकाश उसका सिर है। परन्तु वे जो कुछ कहना चाहते थे, वह इनसे अभिव्यक्त नहीं हुआ। [यह वर्णन] एक तरह से उदात्त था। उन्होंने अपने छात्र को पहले उपरोक्त विचार दिया और उसके बाद क्रमशः उसे उसके पार ले जाते रहे और अन्ततः उसे 'नेति', 'नेति' की उस सर्वोच्च धारणा में पहुँचा दिया, जो कि वर्णन के अतीत है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म
पश्चाद्-ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं
ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।२.२.११।।

वे अमृतस्वरूप हैं, वे हमारे सामने हैं, वे हमारे पीछे हैं, वे हमारे दाहिने हैं, वे हमारे बायें हैं। वे हमारे ऊपर हैं और वे ही हमारे नीचे भी।[४]

गति – जागतिक व्यवहार की नित्य सहचरी है; परन्तु सार्वभौमिक सत्ता के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। ब्रह्माण्ड के भीतर का प्रत्येक अणु तथा परमाणु निरन्तर गति तथा परिवर्तन की अवस्था में रहता है; परन्तु समष्टि के रूप में ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनशील है, क्योंकि गति या परिवर्तन एक सापेक्ष वस्तु है। केवल किसी गतिहीन पदार्थ की तुलना में ही हम किसी गतिशील पदार्थ की बात सोच सकते हैं। गति समझने के लिए दो पदार्थों का होना आवश्यक है। एक इकाई के रूप में सम्पूर्ण जगत् गतिशील नहीं हो सकता। वह किसकी तुलना में गतिशील होगा? उसमें परिवर्तन होना भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह किसकी तुलना में बदलेगा? अतः समष्टि के रूप में यह जगत् एक 'निरपेक्ष सत्ता' है, परन्तु इसके भीतर का प्रत्येक परमाणु निरन्तर गति तथा परिवर्तन की अवस्था में रहता है। यह एक साथ ही अपरिवर्तनशील तथा परिवर्तनशील – निर्गुण तथा सगुण है। ब्रह्माण्ड, गति तथा परमात्मा के विषय में हम लोगों की यही धारणा है और 'तत्त्वमसि'[५] का यही तात्पर्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराकार (ब्रह्म) की धारणा साकार को नकारती नहीं, निर्गुण (ब्रह्म) की धारणा सगुण (सापेक्ष) को विस्थापित नहीं करती, अपितु इसकी ऐसी व्याख्या मात्र करती है, जो हमारी बुद्धि तथा हृदय को पूरी तौर से सन्तुष्ट कर देती है। साकार ईश्वर तथा इस विश्व में जो कुछ है – यह सब कुछ हमारे मनों के द्वारा देखा हुआ निर्गुण ब्रह्म मात्र है। जब हम अपने मनों तथा तुच्छ व्यक्तित्वों से छुटकारा पा लेंगे, तब उस (निर्गुण ब्रह्म) के साथ एक हो जाएँगे। तत्त्वमसि का यही तात्पर्य है। अतः हमारे लिये अपने सच्चे ब्रह्म-स्वरूप को जानना आवश्यक है।[६] **(क्रमशः)**

४. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३९-४०

५. छान्दोग्य उपनिषद्, ६.८.७

६. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ४६

पृष्ठ ५५० का शेष भाग

पराजित कर रहे थे। इसके अलावा किसी दूसरे पुरुष को उन्होंने नहीं देखा। वे पुरुष भगवान श्रीकृष्ण थे। तभी भीम को समझ में आया कि वे व्यर्थ में ही अपने आप पर अहंकार कर रहे थे।

कहते हैं भगवान श्रीकृष्ण ने बर्बरीक के महान बलिदान से प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया था कि वे जगत में 'श्याम' नाम से पूजित होंगे। बर्बरीक को ही 'खाटू श्याम' कहा जाता है और राजस्थान के सीकर जिले में उनका बहुत बड़ा मन्दिर है। ○○○

नारी-शक्ति का आदर्श – माँ सारदा

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(गतांक से आगे)

ज्ञान का आदि-कारण माँ

उपनिषद में एक कथा आती है, जिसका संक्षिप्त उल्लेख कर रहा हूँ। अग्नि को अपनी शक्ति का अभिमान था कि मैं तो अग्नि हूँ, सारे ब्रह्माण्ड को भस्म कर सकता हूँ। उन्होंने जाकर यक्ष से पूछा – आप कौन हैं? यक्ष ने कहा – मैं कौन हूँ, यह तो बाद में बताऊँगा, पहले बताओ कि तुम कौन हो? अग्नि ने कहा – मेरा नाम अग्नि है। अच्छा, क्या कर सकते हो तुम? मैं चाहूँ तो सारे विश्व-ब्रह्माण्ड को भस्म कर सकता हूँ। अच्छा, इतनी शक्ति है तुममें। यक्ष ने एक छोटा-सा घास का तिनका लिया और अग्नि के सामने रखकर कहा – इसको जलाकर दिखाओ। अग्नि ने अपनी सारी शक्ति लगा दी, पर तिनके को आँच नहीं लगी। बड़े लज्जित हुए। सिर झुकाकर लौट आये। उनका चेहरा देखकर ही इन्द्र समझ गये कि यह नहीं जान सके कि यक्ष कौन है।

इन्द्र ने वायु को भेजा । आप तो सारे विश्व-ब्रह्माण्ड को उड़ाकर ले जा सकते हैं। वायु के वेग का क्या कहना! तीव्र वेग से गये। उन्होंने भी उद्दण्डता से पूछा कि तुम कौन हो। यक्ष ने फिर कहा – अच्छा, यह तो बताओ कि तुम कौन हो। मुझे नहीं जानते, मेरा नाम वायु है। अच्छा, क्या कर सकते हो तुम? मैं समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड को उड़ा सकता हूँ। ओह, इतनी शक्ति है तुममें। फिर उन्होंने वह तिनका रखा, कहा कि जरा इसको उड़ाकर तो दिखाओ। वायु को बड़ा खराब लगा। उनकी आत्मा अभिमान से कचोट उठी कि तिनका उड़ाने को मुझसे कहता है। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी, तिनका टस से मस नहीं हुआ। बड़े लज्जित हुए। सिर झुकाकर लौट आये।

इन्द्र ने समझ लिया कि वायु भी नहीं जान सके। तब देवताओं ने कहा कि महाराज, आप ही जाइये। हम लोग तो नहीं जान सके। फिर इन्द्र गये। इन्द्र जब गये, तो वह दिव्य यक्ष अन्तर्धान हो गया। उसकी जगह भगवती उमा विराजमान थीं। इन्द्र ने बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करके पूछा, ''माँ, ये कौन थे?'' तब भगवती उमा ने कहा, ''इन्द्र, तुम लोगों को जो अभिमान हो गया था कि तुमने असुरों पर विजय पायी, यह तुम्हारी भूल थी। विजय तो उस ब्रह्म ने पायी है, और वह ब्रह्म था।''

तो वहाँ भी देखिए, ज्ञान का आदि कारण माँ हैं। माँ ने ज्ञान दिया। इसीलिए दुर्गा सप्तशती में कहा गया –

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

एक बालिका दाम्पत्य जीवन स्वीकार करती है और सन्तान को जन्म देती है। यह सब तो प्रकृति की क्रिया है। उसमें उसका अपना क्या योगदान है? प्रकृति के नियम से वह जननी हो गयी। पर मातृत्व का दर्शन हमें मेवाड़ में होता है। राणा उदयसिंह पाँच वर्ष का भी नहीं हुआ, पिता की मृत्यु हो गयी। अब मेवाड़ का राज्य कौन देखे? मेवाड़ का राज्य देखने के लिए सामन्तों ने व्यवस्था की। उसके एक महामन्त्री थे। सम्भवत: बनबीर उसका नाम था। उसे तब तक राज्य की देखरेख करने को कहा। पर लोग राज्य का लोभ कितने दिनों तक संवरण कर सकते हैं? थोड़े दिन के पश्चात उसके मन में लोभ जागा। उसने सोचा कि यदि मेरा यह छोटा राजकुमार जीवित रहा और जिस दिन यह बालिग होगा, तो उस दिन मुझे यह राज्य छोड़ देना पड़ेगा। तब उसके मन में लोभ के कारण पाप जागा।

एक दिन रात को नंगी तलवार लेकर वह उस कक्ष में पहुँचा, जहाँ राजकुमार सो रहा था। उसने सोचा कि इसको अगर हमेशा के लिये समाप्त कर दूँ, तो मैं इस राज्य का निष्कंटक अधिकारी हो जाऊँगा। मैं और मेरी सन्तान इसका उपभोग करेंगे। क्रोध में काँपता हुआ यह नर-पशु नंगी तलवार लेकर पहुँचा, तो एक माँ वहीं खड़ी थी, जो एक जननी भी थी। राजकुमार की सेवा के लिये एक धाय रखी गयी थी। हाथ में तलवार लिये कड़क कर बनबीर ने पूछा – कहाँ है उदयसिंह? उस धाय ने जो एक बच्चे को अपनी गोद में लिये हुए थी और दूसरा बच्चा सो रहा था, उसकी ओर उँगली दिखा दिया और एक क्षण में उस नर-पिशाच ने उस बच्चे के दो टुकड़े कर दिये।

वह पन्ना धाय थी। उनका अपना बच्चा उस बिस्तर पर सो रहा था और जिसकी वह धाय-माँ थी, उस उदय सिंह को अपनी छाती से लगा रखा था। ये माँ, माँ है। जननी तो थी, पर उसने बलिदान कर दिया अपने गर्भ से उत्पन्न बच्चे को। अगर यह भाव न जागे, तो सौ सन्तानों को भी

जन्म देकर गान्धारी रह जाती है, जो दुष्ट दुर्योधन को बज्र शरीर देना चाहती है। उस मातृत्व को धिक्कार है। मातृत्व तो वह है जो पन्ना ने अपने जीवन में दिखाया।

मीरा वृन्दावन में पहुँची। वे गोस्वामीजी से मिलने गईं। गोस्वामीजी ने सूचना भेजी कि वे किसी नारी से नहीं मिलते। यह उनका नियम है। मीरा ने आश्चर्य से कहा – मैंने तो सुना था कि वृन्दावन में केवल एक ही पुरुष है और वह भगवान कृष्ण हैं, ये दूसरा पुरुष कहाँ से आ गया? तत्काल दौड़कर आये गोस्वामीजी। नतमस्तक हो गये मीरा के चरणों में। कहा – माँ, ज्ञान देकर सचमुच तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मीरा माता के हृदय में यह मातृत्व प्रतिष्ठित था – 'सपनेहुँ आन पुरुष जग माही' – सपने में भी कोई दूसरा पुरुष जग में नहीं है। यह मातृत्व नारी का आदर्श है। केवल जननी हो जाना ही उसका आदर्श है? वह तो प्रकृति उसे बनाती है। उसमें उसका क्या योगदान है? किन्तु पन्ना धाय को प्रकृति नहीं बनाती, इसे साधना से सिद्ध होना पड़ता है। यह मातृत्व साधना के द्वारा उपलब्ध होता है।

जगत् जननी माँ सारदा ने अपने जीवन में यह दिखा दिया कि साधना के द्वारा मातृत्व की जब उपलब्धि होती है, तो वही नारी जगन्माता हो जाती है। संसार के सभी उसके लिये फिर अपने हो जाते हैं। कोई पराया नहीं रहता। तो नारी के जीवन में यह मातृत्व का आदर्श सहधर्मिणी के पथ से होकर ही जाता है, किन्तु जीवन में उस परम लक्ष्य को वरण कर लेने के पश्चात् नारी अपने जीवन में मातृत्व का विकास कर सकती है।

मातृत्व विकास की जो क्षमताएँ सुप्त रूप में उसके हृदय में हैं, उसका विकास कैसे हो सकता है? माँ के जीवन पर एक दृष्टि डालकर देखिए। शौर्य मातृत्व का एक आवश्यक गुण है। इस पर विचार लोग कम करते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के बाद माँ विपन्न हैं, दुखी हैं। ठाकुर ने एक बार कहा था कि तुम कामारपुकुर में अपने घर में रहना और जो अन्न मिले, उसे खाकर वहाँ भगवान का नाम लेना। माँ कामारपुकुर में रह रही हैं। जैसा ठाकुर ने कहा था, वैसे ही सादा भोजन ग्रहण कर भगवान का भजन करती हैं।

ठाकुर के पास एक हरीश नामक व्यक्ति आया करता था। वह थोड़ा मनोरोगी था। एक दिन वह घूमते-फिरते कामारपुकुर में पहुँच गया। माँ तब पैंतीस या छत्तीस वर्ष की थीं। माँ जहाँ रहती थीं, वहाँ खेत से धान काटकर रखा हुआ था। अभी उसकी मड़ाई नहीं हुई थी। धान का ढेर वहाँ रखा था। एक बड़ा ढेर था।

माँ अकेली थीं। कहीं काम से गयी थीं और वह घर में प्रवेश कर रही थीं। हरीश ने देखा कि माँ जा रही हैं, तो तुरन्त दौड़कर आँगन में गया। माँ ने पलटकर देखा, तो उसकी विक्षिप्तता और मनोभावना को समझ गयीं। वह माँ को पकड़ना चाहता था। माँ तत्काल सावधान हो गयीं। माँ उस पुआल के चारों ओर भागने लगीं, दौड़ने लगीं। उनके पीछे हरीश उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ रहा है। माँ ने उस पुआल का कई बार चक्कर लगाया। माँ कहती हैं, ''जब सात बार घूम ली, तो थक गयी। तब मैंने अपना एक रूप धारण किया।'' क्या किया माँ ने? माँ ने भागने के बदले पलट कर हरीश को जमीन पर पटक दिया और उसकी छाती पर अपना घुटना रखकर दबा दिया और उसकी जीभ पकड़कर इतने चाटे लगाये कि वह हाँफने लगा, बेहोश-सा हो गया और तब माँ निर्विकार उठ गयीं।

तभी भगवान श्रीरामकृष्ण देव के एक शिष्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज वहीं रहते थे। ये लोग तो माँ को जगत जननी के रूप में देखते थे। जब माँ का आदेश हो, तो सेवा के लिए प्रस्तुत रहते थे। माँ ने निरंजन महाराज को बुलवाया। निरंजन आये और उनसे कहा कि इसको भेज दो। फिर निरंजन महाराज तो बज्र शरीर थे। उन्होंने उसको विदा किया।

यह है नारी का शौर्य ! शौर्य से अपने सतीत्व की रक्षा करना ! अपने सतीत्व की रक्षा के लिए कुछ भी करने के लिये जो प्रस्तुत रहे, तभी नारी के जीवन में मातृत्व का विकास होता है, तभी उसके जीवन में मातृत्व प्रतिष्ठित होता है। **(क्रमशः)**

प्रश्न – अनुराग नहीं होने से केवल नाम-जप करने से क्या होगा?

श्रीमाँ सारदा देवी – पानी में चाहे तुम इच्छा करके उतरो अथवा कोई तुम्हें धक्का देकर उसमें गिरा दे, तुम्हारे कपड़े तो भीगेंगे ही। प्रतिदिन ध्यान करना। मन अभी कच्चा है न? ध्यान करते-करते मन स्थिर हो जाएगा। सर्वदा विचार करना। जिस वस्तु के पीछे मन दौड़ता है, उसे अनित्य समझकर मन को भगवान के प्रति समर्पित करना ।

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२८)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

"श्रीरामकृष्ण-वचनामृत" पुस्तक के लेखक महेन्द्रनाथ गुप्त कुटम्बीजनों के कटु लड़ाई-झगड़े से त्रस्त होकर जीवन का अंत करने की सोच रहे थे। बस, अब तो आत्महत्या ही एक उपाय है, यह मानकर एक अंधेरी रात में उन्होंने घर छोड़ दिया और निरुद्देश्य इधर-उधर भटकते रहे। सबेरे अपनी बहन के यहाँ वराहनगर में आराम किया। इधर अपने भाँजे को लेकर एक बगीचे से दूसरे बगीचे में घूमते घूमते दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में आ पहुँचे। वहाँ श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रवेश करते ही उन्हें लगा कि जैसे साक्षात् शुकदेव जी भागवत कथा का विवेचन कर रहे हैं। कमरे में उपस्थित भक्तों के साथ वार्तालाप करते हुए श्रीरामकृष्ण के शब्दों का उनके ऊपर जादुई प्रभाव हुआ। उनके मन से हताशा के बादल दूर हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि "भगवान उन्हें बचा रहे हैं, अब किसके लिए दुनिया छोड़ें?" उन्हें गुरु साक्षात् मिल गये। आत्महत्या का विचार हमेशा के लिए चला गया। फिर तो श्रीरामकृष्ण के साथ उनका ऐसा अटूट सम्बन्ध स्थापित हुआ कि उनका समग्र जीवन एकदम बदल गया। श्रीरामकृष्ण के सभी वार्तालाप वे अपनी 'डायरी' में प्रतिदिन लिखते थे, जो बाद में 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' के रूप में प्रकाशित हुए। इस वचनामृत ने हजारों लोगों के जीवन में शांति की स्थापना की। अनेक लोगों को आत्महत्या से बचाया है। असंख्य दुखी लोगों को नवजीवन दिया है। आध्यात्मिक जीवन के अभीप्सुओं को अमरता का मार्ग बताया है।

सुप्रसिद्ध फ्रेन्च गायिका मादाम काल्वे के जीवन में भी इसी प्रकार की घटना हुई थी। १८९४ में शिकागो में उनके जीवन को सबसे बड़ा आघात लगा था। उनकी एकमात्र पुत्री की जलने के कारण मृत्यु हो गई थी। इस असह्य दु:ख को वह सहन नहीं कर पा रही थीं, उन्होंने तीन बार आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था, पर तीनों बार उनके पैर स्वामी विवेकानन्द के निवास की ओर उठ गये। अनिच्छा से, किसी अदृश्य प्रेरणा से उन्होंने स्वामीजी से भेंट का समय माँगा और उनको नये आनन्दमय जीवन की प्राप्ति हुई। इस विषय में उनके ही शब्दों में देखते हैं, "उस समय मैं तन और मन से टूट चुकी थी, ऐसी ही स्थिति में मेरे कई मित्रों को स्वामीजी ने सहायता की थी, इसलिए मैंने भी उनसे मिलने का निर्णय लिया।

समय माँगकर मैं उनके निवास स्थान पर गयी, तब तुरन्त मुझे उनके अध्ययन कक्ष में ले जाया गया। उनके पास जाने से पहले मुझे कहा गया था कि जब तक वे मेरे साथ बात शुरू न करें, मुझे सम्बोधित नहीं करें, तब तक मुझे मौन रहना है। इसलिए उनके कक्ष में मैंने प्रवेश किया और कुछ क्षण मौन खड़ी रही। वे बैठे हुए थे और ध्यानस्थ थे उनका भगवा उत्तरीय जमीन को छू रहा था, पगड़ी से सुशोभित उनका मस्तक कुछ झुका हुआ था, आँखें जमीन पर लगी हुई थीं। कुछ देर बाद ऊपर देखे बिना उन्होंने बात शुरू की।

उन्होंने कहा, 'बेटी! तुम कठिन परिस्थिति में आ गई हो। शान्त हो जाओ, शान्त होना आवश्यक है।'

फिर बिल्कुल शान्त स्वर में, विचलित हुए बिना और असंग होकर, उस व्यक्ति ने मेरे गोपनीय प्रश्नों और चिन्ताओं के बारे में बोलना शुरू किया। मेरे निकटतम मित्रों को भी पता नहीं, ऐसी बातों के बारे में वे बोले। कितना अद्‌भुत!"

अंत में मैंने प्रश्न किया, 'आपने यह सब कैसे जाना? मेरे विषय में यह सब आपको किसने कहा?'

मैं जैसी छोटी शिशु के समान मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ बैठी हूँ, इस तरह उन्होंने शांत, मुस्कारते हुए देखा।

उन्होंने धीरे से उत्तर दिया, 'मुझे किसी ने नहीं बताया है और क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि इसकी आवश्यकता है? मैं खुली पुस्तक की तरह तुम्हारे हृदय-मन की बातें पढ़ सकता हूँ।'

अंत में मेरे बिदा लेने का समय आया।

मैं खड़ी हो गयी, तब उन्होंने फिर कहा, 'पुन: प्रसन्न और सुखी हो जाओ, स्वास्थ्य को सुधारो। अपने शांत क्षणों में अपने दुख-दर्द का विचार मत करो अपनी संवेदनाओं को किसी प्रकार से बाह्य अभिव्यक्ति में रूपान्तर करो। तुम्हारे आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये उसकी आवश्यकता है । तुम्हारी कला के लिए उसकी आवश्यकता है।"

मैंने बिदा ली। मैं उनकी वाणी और व्यक्तित्व से अत्यन्त

शेष भाग पृष्ठ ५६८ पर

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१०)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

स्वामीजी की मध्यस्थता से ही न्यूयॉर्क और बोस्टन के बीच का विवाद सुलझा। दोनों दलों के बीच तुच्छ बातों को लेकर जो अनबन चल रही थी, वह एक आसान तरीके से हल हो गई। ८ अक्तूबर के पत्र में स्वामीजी लिखते हैं, ''मुझे समझ में नहीं आता कि वे (स्वामी सारदानन्द) बोस्टन और न्यूयॉर्क दोनों का कार्य एक साथ क्यों नहीं सँभाल सकेंगे? बोस्टन में हमें कुछ ही व्याख्यान रखने हैं और वह भी मानो खिचड़ी में मसाले की तरह। यह नहीं भूलना है कि उनका मुख्य कार्य वेदान्त का प्रचार करना है...मुझे लगता है कि बोस्टन और न्यूयॉर्क समुदायों के बीच कुछ ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हुई है। यदि तुम इसे सुलझाने में सफल होती हो, तो तुम्हें मेरा हार्दिक आशीर्वाद है और तुम्हारी मुक्ति भी चक्रवृद्धि गति से द्रुत होगी।''

इसी दिन और इसी आशय का पत्र स्वामीजी ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''सारदानन्द के क्या समाचार हैं? वे अब कहाँ हैं? गुडविन कहाँ है? मुझे उनके बारे में कोई जानकारी नहीं है। मैंने सुना है कि गुडविन लन्दन आ रहा है – किन्तु मुझे इसकी कोई सूचना नहीं मिली है।

न्यूयॉर्क में कार्य कैसा चल रहा है?

क्या सारदानन्द बोस्टन और न्यूयॉर्क, दोनों जगह कार्य नहीं कर सकते? यदि ऐसा हो सके, तो मुझे बहुत खुशी होगी...

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अमेरिका में सभी कार्यों में मेरा आप पर ही दृढ़ विश्वास है और वहाँ का सम्पूर्ण दायित्व (मैं) आप पर ही सौंपता हूँ।''

स्वामीजी के प्रस्ताव से न्यूयॉर्क और बोस्टन दोनों समुदाय प्रसन्न हो गए। दोनों के बीच मेल-मिलाप हो गया और स्वामी सारदानन्द जी के मार्गदर्शन और देख-रेख में अमेरिकी-कार्य सुखपूर्वक फलने लगा।

गुडविन ७ अक्तूबर को अमेरिका से रवाना हुए। इसके बाद वे कभी अमेरिका नहीं आने वाले थे। जिस दिन गुडविन इंग्लैंड के लिए ट्यूटोनिक जहाज पर चढ़े, स्वामीजी ने उसी दिन लंदन में अपने व्याख्यान और कक्षाओं की अन्तिम श्रृंखला शुरू की। स्वामीजी अब ६३ सेन्ट ज्योर्ज रोड पर नहीं रहने वाले थे, उनके व्याख्यान भी वहाँ नहीं होने वाले थे, क्योंकि लेडी मार्गेसन ने यात्रा से वापस लौटकर अपने इस घर में रहना आरम्भ किया। स्वामीजी की कक्षाओं के लिए स्टर्डी ने एक इमारत की छठी मंजिल पर बड़ी जगह ली। यह इमारत अन्य व्यावसायिक भवनों के बीच थी। सुगमतापूर्ण इस स्थान के बारे में गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''यह लंदन के श्रेष्ठ राजमार्गों में से एक पर स्थित है।'' स्वामीजी के रहने के लिए तलघर पर स्थित किराये का घर लिया गया था, जो उनके व्याख्यान सभागृह के पास ही स्थित था।

गुडविन २० अक्तूबर के बाद ही लन्दन पहुँचे। मातृभक्त गुडविन सर्वप्रथम अपनी माँ से मिलने बाथईस्टन गए। उसके बाद वे लन्दन में स्वामीजी और स्वामी अभेदानन्द के किराए के मकान में रहने गए। २१ अक्तूबर को वे श्रीमती बुल को लिखते हैं, ''दोनों स्वामी घर पर हैं...और मैं अकेला ही घरबार, भोजन बनाना इत्यादि कार्य देखता हूँ।'' २३ अक्तूबर को गुडविन पुन: श्रीमती बुल को विस्तारपूर्वक लिखते हैं, ''हमारा मकान तलघर में स्थित है, किन्तु इसकी दो बड़ी विशेषताएँ हैं कि यह आरामदायक है और सम्मानजनक है। इसमें भोजन-कक्ष, रसोई-घर, तीन कमरे तो हैं ही और एक दरबान (जो इंग्लैंड में दुर्लभ किन्तु विशिष्ट आकर्षण माना जाता है) भी है। यह स्वामीजी के ३९ विक्टोरिया स्ट्रीट स्थित व्याख्यान-सभागृह से दो मिनट दूरी पर स्थित है...

शाम को एक महिला तीन घण्टे काम करने के लिए आती है, अन्यथा मैं ही भोजन पकाना और अन्य कार्यों की देखभाल करता हूँ। इस प्रकार साफ-सफाई का कार्य हमें

स्वयं ही करना पड़ता है, और यह एक अच्छी सुविधा है।''

स्वामीजी की दिनचर्या उनके पिछले लन्दन प्रवास के समान भले ही व्यस्तपूर्ण न थी, किन्तु फिर भी कष्टकर अवश्य थी। उन्हें जिस आराम की आवश्यकता थी, वह उन्हें कभी मिल नहीं पाता था। गुडविन ने जोसेफीन मैक्लाउड को लिखा था कि ''इससे अधिक कोई उसका योग्य अधिकारी नहीं था।'' स्वामीजी ने किराए वाले सभागृह में मंगलवार-गुरुवार की सुबह तथा बुधवार की शाम को कक्षाएँ लेना आरम्भ किया। सोमवार के अपराह्न में वे विम्बल्डन जाते और वहाँ कुमारी मूलर के घर उनका व्याख्यान होता था। इसके अलावा स्वामीजी को अन्य स्थानों पर भी व्याख्यान के लिए जाना होता था। उदाहरण के तौर पर उन्होंने सीसम क्लब में व्याख्यान दिया था। उन्हें लन्दन के उपनगर वेस्ट क्रायोडोन स्थित यूनिटेरियन एण्ड फ्री क्रिश्चन चर्च में एक प्रवचनमाला के लिए कहा गया था, जहाँ उन्हें पाँच धर्मोपदेश देने थे।

स्वामीजी ने सीसम क्लब में 'विशेषाधिकार' पर जो व्याख्यान दिया था, गुडविन ने उसे रिकॉर्ड कर लिपिबद्ध किया था। बाद में यह विवेकानन्द साहित्य के प्रथम खण्ड में प्रकाशित हुआ। स्वामीजी द्वारा वेस्ट क्रायोडोन स्थित यूनिटेरियन चर्च में प्रदत्त धर्मोपदेश के बारे में गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''(स्वामी विवेकानन्द) ने पिछले रविवार को उत्कृष्ट प्रवचन दिया।'' यूनिटेरियच चर्च इस प्रवचन को प्रकाशित करना चाहती थी। गुडविन ने भी इसकी चर्चा श्रीमती बुल से की थी। दुर्भाग्यवश इस प्रवचन की सामग्री यूनिटेरियन चर्च में कभी प्राप्त नहीं हो सकी। यही समस्या कुमारी मूलर के घर प्रति सोमवार अपराह्न में दिए गए व्याख्यानों के बारे में थी। इन व्याख्यानों में गुडविन स्वामीजी के साथ थे या नहीं, इस विषय में कोई जानकारी नहीं है, क्योंकि इन प्रवचनों की भी प्रतिलिपियाँ कभी मिल नहीं सकीं।

ऐसा कहा जाता है कि स्वामीजी ने अपने इस द्वितीय लन्दन प्रवास में कुल मिलाकर बयालींस कक्षाएँ और व्याख्यान दिए थे। इनमें सत्रह लिपिबद्ध हुए और उन्हें बाद में प्रकाशित किया गया।

स्वामीजी ने ईश, कठ, और छान्दोग्य उपनिषद पर प्रवचन दिए थे। ईश उपनिषद पर प्रवचन 'सर्वभूतों में ब्रह्म दर्शन' नाम से हुआ। कठ उपनिषद पर दिए गए दो प्रवचन 'साक्षात्कार' और 'बहुत्व में एकत्व' नाम से थे। स्वामीजी ने छान्दोग्य उपनिषद पर प्रथम प्रवचन 'आत्मा की मुक्ति' के नाम से दिया था। स्वामीजी जब छान्दोग्य उपनिषद पर द्वितीय प्रवचन दे रहे थे, तब श्रोताओं में से एक ने उनसे 'व्यावहारिक वेदान्त' के बारे में पूछा। स्वामीजी ने भी उत्साहपूर्वक यह विषय लिया। छान्दोग्य उपनिषद को केन्द्र में रखकर स्वामीजी ने व्यावहारिक धर्म पर चार व्याख्यान दिए। आज हम जो 'व्यावहारिक वेदान्त' पुस्तक देखते हैं, वह उन्हीं सज्जन के प्रश्न और स्वामीजी के चार व्याख्यानों का परिणाम है। स्वामीजी के द्वितीय व्यावहारिक वेदान्त प्रवचन के बारे में गुडविन ने जोसेफीन मेक्लाउड को लिखा था, ''...उन्होंने स्वयं को उन्मुक्त कर शुद्ध अद्वैत वेदान्त व्याख्यान दिया, जिसे वे विशुद्ध रणघोष वेदान्त कहते हैं।''

इसी दरम्यान स्वामीजी के तीन और व्याख्यान हुए। विवेकानन्द साहित्य में ये 'तर्क और धर्म', 'ब्रह्म एवं जगत्' और 'वेदान्त और विशेषाधिकार' नाम से हैं। 'तर्क और धर्म' प्रवचन के बारे में गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''बुधवार सन्ध्या को उनका जो व्याख्यान हुआ था, वह वेदान्त पर सर्वथा अभिनव तर्कपूर्ण व्याख्यान था, जिसके बारे में उन्होंने हाल ही में सोचा था। सचमुच यह एक उत्कृष्ट व्याख्यान था।'' गुडविन स्वामीजी की व्याख्यानमाला आरम्भ होने के बाद पहुँचे थे। इसलिए वे उनके प्रथम 'माया' व्याख्यान को लिपिबद्ध करने के समय नहीं थे। एक अन्य आशुलिपिक को कुछ दिन के लिए रखा गया था। गुडविन ने इस व्याख्यानमाला के दो अनुवर्ती व्याख्यान – 'माया और ईश्वरधारणा का क्रमविकास' एवं 'माया और मुक्ति' को रिकॉर्ड कर उनका प्रतिलेखन किया था। 'वेदप्रणीत धार्मिक आदर्श' इस व्याख्यान को गुडविन ने लिपिबद्ध किया अथवा दूसरे अल्पकालीन आशुलिपिक ने, यह विदित नहीं है, क्योंकि यह प्रवचन किस दिनांक को दिया गया, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी।

लन्दन ने स्वामीजी के सन्देश को उत्साह और प्रशंसा से ग्रहण किया। सुबह की कक्षाओं में लोग बढ़ने लगे। २० नवम्बर को गुडविन ने जोसेफीन मैक्लाउड को लिखा, ''सुबह का व्याख्यान लोगों से भरा रहता है, हर बार लगभग २०० लोग रहते हैं। प्रत्येक व्याख्यान में नए लोग आते हैं।'' स्वामीजी भी मानो वेदान्त के सर्वोच्च सत्यों को

अभिव्यक्त करने में अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे। गुडविन ने जोसेफीन मैक्लाउड को दस दिन बाद लिखा था, ''सचमुच, मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि उनके व्याख्यान पहले से श्रेष्ठतर हुए हैं।''

गुडविन द्वारा लिपिबद्ध प्रथम लन्दन प्रवास के व्याख्यान – 'धर्म की आवश्यकता' और 'मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप' को स्टर्डी ने पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कराया। बाद में ये व्याख्यान ज्ञानयोग में जोड़े गए। स्वामीजी के प्रथम लन्दन प्रवास के बाद के व्याख्यानों को लिपिबद्ध नहीं किया गया था, क्योंकि गुडविन तब स्वामी सारदानन्द के साथ अमेरिका रवाना हो गए थे। स्वामीजी ने नवम्बर के अन्त में अथवा दिसम्बर के प्रारम्भ में 'रामकृष्ण परमहंस' पर व्याख्यान दिया था। गुडविन ने इसे आशुलिपि में लिखा था और कुछ महीनों बाद इसे 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका में प्रकाशित किया गया। यह व्याख्यान और श्रीरामकृष्ण देव पर अन्य व्याख्यान, जो स्वामीजी ने फरवरी में न्यूयॉर्क में दिया था, दोनों को जोड़कर बाद में 'मेरे गुरुदेव' पुस्तक प्रकाशित की गई।

गुडविन ने नवम्बर का पूरा महीना स्वामीजी की कक्षाओं और व्याख्यानों को प्रकाशित करने की तैयारी में लगा दिया। १ दिसम्बर को स्टर्डी ने स्वामीजी के लन्दन व्याख्यानों को पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया। प्रत्येक महीने स्वामीजी के नवीन व्याख्यान को पुस्तिका के रूप में विक्रय करने के लिए प्रकाशित किया जाता था।

किन्तु नवम्बर महीने के आते-आते स्वामीजी कुछ बृहत् योजनाओं के बारे में सोचने लगे। स्वामीजी भारत लौटने के लिए आतुर थे। १८९६ की शरद ऋतु में भारत में भयंकर अकाल आया। स्वामीजी ने अंग्रेजी समाचारपत्रों में इसकी भयावह खबरें तथा भारत से आए पत्रों में भी इसकी खबर सुनी। उन्होंने अविलम्ब राहत कोष हेतु धनराशि भेजी। वे जानते थे कि दरिद्रता और निरक्षरता की समस्याओं का स्थायी समाधान ढूँढ़ना ही मुख्य बात है और यही उनके जीवन की 'बृहत् परियोजना' थी – एक नए मठ की कलकत्ता में स्थापना करना। इस परियोजना के बारे में गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था कि ऐसा मठ 'जो वेदान्त के प्रवक्ताओं का प्रशिक्षण केन्द्र हो।' गुडविन के लिए बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि स्वामीजी उन्हें भी वेदान्त प्रशिक्षक के रूप में चाहते थे। **(क्रमशः)**

श्रीमाँ सारदा देवी के पत्र

जय माँ

१९.३.१९१७,५ चैत्र, १३२३

प्रिय बेटा,

तुम्हारे पत्र से सारे समाचार मालूम हुए। तुम्हारे पत्र के द्वारा मैं तुमको पहचान गई हूँ। तुम्हारी बीमारी की बात सुनकर मैं बहुत चिन्तित हूँ। तुम दुर्गाप्रसाद सेन से उस रोग की दवा ले सकते हो, क्योंकि उसी की दवा से राधू स्वस्थ हुई है। हमेशा अनासक्तिपूर्वक रहने का प्रयास करना। कुछ दिन ध्यान थोड़ा कम करना, परन्तु जप कम-से-कम एक सौ आठ बार तथा इससे अधिक जितना कर सको, उतना ही अच्छा है। यदि मेरा ध्यान करने की तुम्हें बहुत इच्छा हो, तो वैसा ही करना; क्योंकि मुझमें और ठाकुर में कोई अन्तर नहीं है। केवल रूप का ही अन्तर है। जो ठाकुर हैं, वे ही इस शरीर में हैं। ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में तुमने पूछा है। तुम तो ब्रह्मचारी ही हो, फिर तुम्हें किस बात की चिन्ता? मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर सको। तुम्हें उनके चरण-कमलों में अटल भक्ति एवं विश्वास प्राप्त हो। इति।

आशीर्वादिका,
तुम्हारी माँ

पृष्ठ ५६५ का शेष भाग

प्रभावित हुई। उन्होंने जैसे मेरे मन की उलझन को दूर कर दिया था। उसके स्थान पर स्पष्ट और शांतिदायक विचार भर दिये थे। मैं फिर आनन्दित और प्रफुल्लित हो गई।''

संत महात्मा या सिद्ध पुरुष के आश्रय में जाने से मन में चल रहे तूफान को वे शांत करके विचारों को योग्य दिशा की ओर ऐसे मोड़ देते हैं कि नीचे की ओर बहता प्रवाह ऊर्ध्वगामी हो जाता है। आज भी जीवन की विपत्तियों से निकालने के लिए, सच्चा मार्ग बताने के लिये साधु संत विद्यमान हैं। बड़े शहरों में तो कई सेवाभावी संस्थायें निःशुल्क मार्गदर्शन देने का कार्य कर रही हैं। कई स्थान पर तो, ''आत्महत्या करने से पहले तत्काल फोन करें'' ऐसी तत्काल सेवा भी उपल्बध होती है, इसलिए विपत्तियाँ जीवन को समाप्त कर दें, उससे पहले विपत्तियों से बाहर निकलने के लिए बाह्य सहायकों का आश्रय लेना अनिवार्य है। **(क्रमशः)**

प्रेरक लघुकथा

प्रेम भक्ति की महिमा न्यारी प्रगट भये भगवान मुरारी

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

संत नरसी मेहता का पुत्र शामलशा जवान हो चुका था। उसके लिए एक मध्यस्थ बड़नगर के दीवान मदनराय की कन्या जूठीबाई का रिश्ता लेकर आया, तो संत सोचने लगे कि एक धनाढ्य का मुझ जैसे सादगीपूर्ण जीवन बितानेवाले के साथ रिश्ता कैसे हो सकता है? किन्तु सोचा कि हो सकता है कि भगवान की ऐसी ही इच्छा होगी। इसीलिए तो उन्होंने यह सम्बन्ध पक्का कराना चाहा है। मध्यस्थ उनकी परिस्थिति से अच्छी तरह से परिचित था। वह नरसी मेहता से ईर्ष्या करता था। उसने दीवान से मेहताजी के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बातें बताई थीं और विवाह में उनकी हँसी उड़ाना चाहता था। मेहताजी की पत्नी माणिक गौरी भी ऐसे बेमेल विवाह के पक्ष में नहीं थीं। किन्तु मेहताजी ने उससे कहा, ''भक्त को भक्तवत्सल भगवान पर भरोसा करना चाहिए। मेरे प्रभु बारात को ऐसा सजाएँगे कि देखकर सगे-सम्बन्धियों की आँखें चौंधियाँ जाएँगी।'' उन्होंने भगवान नटनागर श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे विवाह में पधारें और उनकी लाज बचाएँ।

निर्धारित दिन मेहताजी ने कुछ नाते-रिश्तेदारों और साधुमंडली के साथ बैलगाड़ी से बड़नगर के लिए प्रस्थान किया। किन्तु उनके पहुँचने से ठीक पहले उनके पक्ष के बहुत से लोग शहनाई और बाजे-गाजे के साथ नगर सीमा तक आ गए थे। बारात की ताम-झाम देख नगरवासियों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। वे आपस में चर्चा करने लगे कि ऐसी बारात तो उन्होंने इससे पहले कभी देखी ही नहीं थी। विवाह धूमधाम से हुआ। मध्यस्थ जान चुका था कि नरसी मेहता पर भगवान की कृपा दृष्टि होने से ही ऐसा चमत्कार हुआ। वह मन-ही-मन लज्जित हुआ । सन्त मेहता भी दीनदयाल भगवान की दयालुता से भावुक हो उठे। उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से डबडबा गए। बारातियों की ओर जब उन्होंने दृष्टि फेरी, तो एक क्षण के लिए नटनागर की मनमोहिनी छबि दिखाई दी। उनके दिव्य दर्शन की मनमोहिनी छबि दिखाई दी। उनके दिव्य दर्शन की सुधाधारा की तरंगें मन में हिलोरें उठने लगीं। उनकी अहैतुकी कृपा से वे कृतकृत्य हो गए।

जब भक्त भगवान को अपना मानता है, तो भगवान भी उसकी आत्मीयता से अभिभूत हो उसकी सहायता करने के लिए सत्वर प्रकट हो जाते हैं। ○○○

पुस्तक समीक्षा

भगिनी निवेदिता और भारतीय नवजागरण

लेखक – डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

अध्यक्ष, स्वामी विवेकानन्द चेयर, पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर और सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर - ४९२०१० (छ.ग.), मो. ९८२६३३१८१५. प्रकाशक – विद्या विहार, १६६० कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली - ११०००२ पृष्ठ – ११९, मूल्य-२५०/-

स्वामी विवेकानन्द ने भारत के पुनरुद्धार के लिये देश के विभिन्न भागों में जाकर देशवासियों को जाग्रत किया। विकास के मुख्य अंग शिक्षा पर जोर दिया और जनता में देशभक्ति की लहर पैदा की। उनके इस कार्य में तीव्र गति देने का कार्य उनके गुरुभाइयों और उनकी प्रिय शिष्या भगिनी निवेदिता ने किया। निवेदिता ने देश के विभिन्न भागों में जाकर लोगों में शिक्षा और देशभक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिये कई व्याख्यान दिये और राष्ट्रीय नवजागरण किया।

भगिनी निवेदिता के जीवन के विभिन्न आयामों और दृष्टिकोणों से परिपूर्ण 'भगिनी निवेदिता और भारतीय नवजागरण' नामक पुस्तक की रचना डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने की है। डॉ. वर्माजी पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में 'स्वामी विवेकानन्द चेयर' में चेयर प्रोफेसर और विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के संस्थापक सचिव हैं। यह पुस्तक निवेदिता का भारतीयता बोध, सामाजिक चिन्तन, भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, कला और सर्वोपरि यहाँ की आध्यात्मिकता के प्रति आकर्षण और भारतीय जागरण में किये गये योगदान पर प्रकाश डालती है। ○○○

पुस्तकें प्राप्त हुईं –

पारम्परिक धरोहर

लेखिका – डॉ. सुनयना मिश्रा

दूरभाष -९४२४२३०७२९. प्रकाशक – विकल्प विमर्श, निगम कॉलोनी, रायपुर, पृष्ठ - २४०, मूल्य - २५०/-

पर्व, व्रत, त्योहार, मानव-संस्कार भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। वर्षभर में आनेवाले त्योहारों, मानवीय संस्कारों और उनकी विधियों को लोकगीतों और कथाओं द्वारा उजागर करती यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

बुद्धावतार (वैदिक परम्परानुरूप बुद्ध का जीवन सन्देश)

लेखक - डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा

दूरभाष – ९८९३३ ९४९४७. पृष्ठ-३०, मूल्य - २०/-

समाचार और सूचनाएँ

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो धर्म-महासभा में प्रदत्त ऐतिहासिक व्याख्यान के १२५वें स्मरणोत्सव के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये –

रामकृष्ण मिशन, कोयम्बटूर ने सर्वधर्मसभा का आयोजन किया, जिसमें भारत के सम्माननीय प्रधानमन्त्रीजी ने वीडिओ कान्फ्रेन्स द्वारा सभा को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर ने आश्रम से एक शोभायात्रा निकाली, जिसमें ६५० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। रायपुर नगर के महापौर श्री प्रमोद दूबे जी ने हरी झंडी दिखाकर शोभायात्रा को आरम्भ किया और स्वयं बहुत दूर तक पैदल चले।

'विवेक ज्योति' सी.डी.-पेनड्राइव का विमोचन

इस उपलक्ष्य में आश्रम द्वारा प्रकाशित 'विवेक ज्योति' के ५६ वर्षों का डिजिटल-संग्रह के सी.डी. और पेनड्राइव का विमोचन स्वामी सत्यरूपानन्द जी द्वारा स्वामी अव्ययात्मानन्द जी, महापौर श्री प्रमोद दूबे जी, विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी की उपस्थिति में हुआ।

युवा-सम्मेलन का आयोजन

२३ सितम्बर, २०१८ को युवा-सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव, स्वामी सत्यरूपानन्द जी, रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के सचिव, स्वामी सेवाव्रतानन्द जी, विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और 'हरीभूमि' के सम्पादक डॉ. हिमांशु द्विवेदी जी ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। स्वागत स्वामी अव्ययात्मानन्द जी, संचालन स्वामी देवभावानन्द जी और धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

वर्धमान – १२ अगस्त को आध्यात्मिक शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें ५०० भक्तों ने भाग लिया।

बैंगलुरु – ३० जुलाई से २ अगस्त तक सृजनात्मक कला शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें विभिन्न कला संस्थानों से ३५ कलाकारों ने बहुत सी चित्रकलाएँ और शिल्पकलाएँ बनायीं। सभी 'स्वामीजी की विश्व-धर्म महासभा में प्रतिभागिता' इसी मूल विषय पर आधारित थीं।

कोयम्बटूर मिशन - कोयम्बटूर के पाँच शिक्षा संस्थानों में २ से २१ अगस्त तक सांस्कृतिक प्रतियोगिताएँ हुईं, जिसमें कुल ५३५ विद्यार्थियों ने भाग लिया। सभी स्थलों पर प्रतियोगिता के पश्चात् व्याख्यान, पुरस्कार वितरण समारोह और नाट्य-मंचन हुआ।

डरबन (दक्षिण अफ्रीका) ने १८ जुलाई को नेलसन मंडेला अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाया। श्री जे. पी. नड्डा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री, भारत सरकार और अन्य लोगों ने १६० लोगों की सभा को सम्बोधित किया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर द्वारा संचालित विवेकानन्द इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन विभाग ने ११ सितम्बर, २०१८ को अपराह्न ३ बजे धर्ममहासभा का आयोजन किया। ठीक ३.३० बजे विवेकानन्द विद्यार्थी भवन के छात्र मंगलुराम चक्रधारी और सुनील कुमार नुरेटी ने बहुत देर तक शंखनाद कर वातावरण को भव्य बना दिया। सभा के मुख्य अतिथि थे प्रसिद्ध लेखक, चिन्तक एवं पत्रकार श्री रमेश नैयर जी, वक्ता डॉ. मीता झा, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी थे और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने इस सभा की अध्यक्षता की।

रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई में १५ और १६ सितम्बर, २०१८ को दो दिवसीय स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मनाया गया। १५ सितम्बर के भक्त शिविर और १६ के युवाशिविर में स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी सेवाव्रतानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, भिलाई स्टील प्लान्ट के सी.ई.ओ. श्री एम. रवि जी, विवेकानन्द तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. मुकेश वर्मा जी ने सभा को सम्बोधित किया। ○○○

‘विवेक-ज्योति’ में वर्ष २०१८ ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

अन्य संकलन

OOO

कुम्भ-मेला २०१९

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

विज्ञानानन्द मार्ग, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद – २११ ००३, फोन : (०५३२) २४१३३६९, मो.- ९४५३६३०४०६

email : rkmsald@gmail.com, allahabad@rkmm.org

एक अपील

हम सभी जानते हैं कि तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद) विभिन्न धर्मों का आध्यात्मिक पावन स्थल है। न केवल हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, अपितु सभी धर्मों और मतों के लोग, तीर्थराज प्रयाग के आध्यात्मिक परिवेश में व्याप्त विशाल स्पन्दन की अनुभूति करने यहाँ आते हैं। कुम्भ के समय यहाँ विभिन्न धर्मों का समागम दिखायी देता है, जिसकी छवि मानो लघु-भारत के सदृश हो जाती है। संत-महात्मा एवं धर्माचार्यों की अनुकम्पा से अनादिकाल से भक्तगण पावन त्रिवेणी संगम में डुबकी लगाकर पवित्र होने हेतु कुम्भ मेले में आते हैं। आगामी कुम्भ मेला १४ जनवरी से १९ फरवरी, २०१९ तक आयोजित किया जा रहा है। सरकारी आकलन के अनुसार मेले में १५ करोड़ से अधिक साधु, भक्त और तीर्थयात्री पावन जल में स्नान करेंगे।

इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद, देश के दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये लगभग पाँच लाख से अधिक साधुओं, भक्तों और तीर्थयात्रियों की सेवा-सहायता में अपना योगदान देगा। हमारे लिए यह विशिष्ट सुअवसर है कि हम ठाकुर, माँ और स्वामीजी के संदेश का प्रसार करें और स्वामीजी के 'मानव-सेवा ही ईश्वर-सेवा है' के सपने को साकार कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करें। परम पूज्य स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज (रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद के संस्थापक और श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य) के आशीर्वाद से हम त्रिवेणी संगम तट पर शिविर का आयोजन कर रहे हैं।

मेले के दौरान श्रद्धालुओं, तीर्थयात्रियों को निम्नलिखित सुविधायें दी जायेंगी –

* प्रार्थना और व्याख्यान सभागृह
* चौबीस घण्टे नि:शुल्क, आपातकालीन सुविधासम्पन्न धर्मार्थ चिकित्सालय
* पुस्तक-विक्रय केन्द्र एवं ठाकुर, माँ स्वामीजी की चित्र-प्रदर्शनी
* साधु, भक्त और तीर्थयात्रियों के भोजन और आवास की सुविधा

इस कुम्भ मेला शिविर का कुल व्यय लगभग १,५०,००,०००/- (एक करोड़ पचास लाख) रुपये अनुमानित किया गया है। इतने बड़े व्यय-भार के वहन हेतु हम आपसे और अन्य उदारहृदय भक्तों से आग्रह करते हैं कि वे इस मंगल कार्य में हमारा सहयोग करें, साथ ही स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित सेवा-यज्ञ के अधिकारी बनें।

आपकी उदारतापूर्वक दी गई दान-राशि सहर्ष स्वीकार और सूचित की जायेगी। आप दान-राशि 'रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद' के नाम से चेक, डी.डी. द्वारा अथवा बैंक ट्रांसफर NEFT/ RTGS on State Bank of India, Allahabad, A/C. NO. 10210448619, IFSC : SBIN0002584 में जमा करा सकते हैं।

आपका दान आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है। कृपया दानराशि के साथ अपना पैन नम्बर अवश्य भेजें। हमारा पैन नम्बर – AAAARIO77P है।

आशा है कि आप इस विशेष अवसर पर हमारे सेवाकार्यों में सहयोग कर अपना जीवन लाभान्वित करेंगे।

नमस्कार और मंगल-कामनाओं सहित,

स्वामी अक्षयानन्द
सचिव